

❀ श्रीश्री गौरांगमहाप्रभुर्जयति ❀

सानुवादम्

“ग्रन्थरत्नत्रिक्रमः”



श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्तीजी किरित्तम्

(चन्द्रिका, किरण, कणिका)

रागवर्त्मचन्द्रिका, (२) उज्वलनीलमणि-
किरणः (३) भागवतामृतकणिका



प्रकाशक—

कृष्णदास बाबा

२०१६ }
(२॥) }

कुसुमसरोवर (गवालियर मन्दिर)

पो० राधाकुण्ड (मथुरा)

❁ समर्पणपत्रम् ❁

भज-निताइ गौर राधेश्याम ।

जप-हरे कृष्ण हरे राम ॥

श्रीश्रीद्वारकेन्द्र-उपासक, साधुगुरुपरायण, जयपुर-
राज्यान्तर्गत "गीजगढ़" स्थान निवासी, नित्य-
धाम प्राप्त भक्तवर श्री कुशलबिहजी के पुनीत
स्मरण में यह ग्रन्थत्रय प्रकाशित होकर
समर्पित है ?

भूमिका

प्रस्तुत रागवर्त्मचंद्रिका, उज्वलनीलमणिकिरण तथा भागवतामृतकण इन तीनों ग्रन्थों के रचयिता महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथचक्रवर्ती जी का जन्म १६०६ शक मतान्तर १६८६ शक में बंगदेश स्थित मूर्शिदाबाद जिला सागरदीघि थाना के अधीन देवग्राम नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम श्रीनारायणचक्रवर्तीजी है। श्री विश्वनाथ जी बचपन से ही प्राथमिक पाठ का शेष कर सैदाबाद में जाकर भक्तिशास्त्र संस्कृत का साथ ही का अध्ययन करने लगे थे। संकल्पकल्पद्रुम नामक ग्रंथ में स्वयं आप श्री नरोत्तमठाकुर महाशय की शाखा परम्परा में श्रीकृष्णचरणचक्रवर्ती जी को अपने परमगुरु तथा उनके पुत्र श्रीराधारमणचक्रवर्तीजी को गुरु करके बताया है। श्रीकृष्णचरणजी सैदाबाद निवासी श्रीरामकृष्ण आचार्य के पुत्र एवं बालुचरनिवासी गंगानारायण चक्रवर्तीजी के दत्त पुत्र थे जोकि सैदाबाद में रह कर भक्तिशास्त्र का अध्यापना कराते थे। विश्वनाथजी ने उन्हीं के पास भागवतादि भक्तिशास्त्र का अध्ययन किया था, विश्वनाथजी यद्यपि ज्ञातिपरिजन के अनुरोध से अल्पवयस में दारपरिग्रहित हुए थे तो भी उस में विन्दुमात्र आकर्षित नहीं हुए। शेष में समस्त परित्याग कर बृन्दावन में अ गये एवं वहाँ उस समय के वैष्णव समाज के कर्णधार रूप बन गये। उन्होंने अनेकानेक वैष्णव ग्रन्थ का तथा गौड़ीय-गोस्वामियों के द्वारा विरचित अनेक भक्ति ग्रंथों की टोका का निर्माण कर वैष्णव समाज का महान् कल्याण साधन किया। उन के वेशाश्रय का नाम “हरिवल्लभ” था। बंगभाषा में तथा संस्कृतभाषा में अनेकानेक पद “हरिवल्लभ” नाम से प्राप्त है। श्रीयुक्तविश्वनाथ जी प्रगाढ़ पण्डित, महान् दार्शनिक, परम भक्त, श्रेष्ठ रसवेत्ता, उत्तम कवि, वैष्णव चूड़ामणि, तात्कालीन गौड़ीय वैष्णवों के अध्यक्ष रूप माने जाते हैं। उस समय उनके नाम से यह श्लोक प्रसिद्ध हुआ कि-

विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्मप्रदर्शनात् ।

भक्तचक्रे वर्तितत्वात् चक्रवर्त्ताख्ययाऽभवत् ॥

अर्थात्-भक्तिमार्ग दिखलाने के कारण विश्व का नाथ रूप तथा भक्त चक्र में (भक्त समाज में) उत्कर्ष रूप विद्यमान रहने के कारण "चक्रवर्त्ती" यह नाम उनका पड़ा है । वे जहाँ बैठ कर ग्रन्थ लिखते थे वहाँ वर्षा जल नहीं पड़ता था अर्थात् वे सब ग्रंथ जल लिप्त नहीं होते थे । ऐसा कहा जाता है कि-उनके उत्तर काल में गोवर्द्धन के सिद्ध कृष्णदास बाबाजी महाराज ने मानसीगंगा में डूब कर तीन-चार दिवस के उपरान्त उनकी लिखित पुस्तकों का संग्रह किया था । श्रीचक्रवर्त्तीजी गौड़ीय समाज में श्रीपादरूपगोस्वामिजी का अवतार माने जाते हैं ।

इन के द्वारा स्थापितविग्रह " श्रीगोकुलानन्द जी" वृन्दावन में बिराजमान है । माघी शुक्ला पञ्चमी के दिवस श्रीराधाकुण्ड में श्रीचक्रवर्त्तीजी अन्तर्हित हुए हैं । वृन्दावन पत्थरपुरा में इन की समाधि थी जो कि वर्तमान गोकुलानन्द जी में अपसारित हुई है । बालुचर में इन के वंशधर अभी भी मौजूद हैं । चक्रवर्त्ती जी ने वैष्णव समाज का बड़ा भारी उपकार किया है । जीव गोस्वामीजी के बाद गौड़ीय सम्प्रदाय का जो पतनारम्भ हो उठा था उस का पुनरुद्धार चक्रवर्त्तीजी ने ही किया है । गौड़ीय वैष्णव समाज में राधा गोविन्द की परकीया भावकी उपासना पद्धति श्रीमन्महाप्रभु जी से लेकर अब तक चल आ रही है । पद्मपुराण के पातालखंडीय वृन्दावनमाहात्म्य के ४ मां अध्याय, सनत्कुमार संहिता के छत्तीसवाँ पटल, भागवतादि शास्त्र, रसाचार्य जयदेवादि महानुभावों के साहित्य, चण्डीदास विद्यापति आदि प्राचीन रसिकों की वाणियों से यह उपासना सुसिद्ध है । महाप्रभु ने इसी उपासना को परम महत्व दिया तथा श्रीरूपसनातनादि गोस्वामियों के द्वारा उस का उद्घाटन करवाया ।

श्रीजीवगोस्वामी तक यह उपासना सुस्थिर रही । उन के बाद वह कुछ शिथिल हो गई । श्रीचक्रवर्त्तीजी ने निज अकाव्य-युक्ति व शास्त्र

प्रमाणों से उसको ऐसा सुदृढ़ कर दिया कि जिस की भी भक्ति कभी टूट नहीं सकती । गौड़ीय समाज में ऐसी प्रसिद्धि है कि-चक्रवर्तीजी की विद्यमानता से कुछ पण्डितों ने परक्रियाभाव उपासना के विषय को लेकर नाना वाद वितण्डा किया था, परन्तु चक्रवर्तीजी ने निज प्रगाढ़ विद्वत्ता तथा अकाठ्य युक्ति प्रमाणों के द्वारा विपक्षियों को परास्त कर उस मत को सुदृढ़ कर दिया । वे सब पण्डित मातपर्य में आकर एकान्त भ्रमणशील चक्रवर्ती के प्राणनाशार्थ उद्यत हुए । पण्डितों ने चक्रवर्ती जी को न देख कर दो तीन सहचरी के साथ पुष्प विनती हुई एक ब्रजवालिका देखी । पण्डितों ने ब्रजवालिका रूप धारी चक्रवर्तीजी से पूछा । लानी ! महात्मा चक्रवर्ती को तुमने देखा क्या ? वालिका ने कहा—देखा तो था परन्तु कहाँ चल विये होंगे । वालिका का बटाक्षपात-भावभङ्गि-मन्दहास्य-सौन्दर्य-लावण्यादि से पण्डित गण मुग्ध होकर मत्सर्ग्यता को भूलकर पुनः परिचय पूछने लगे । उत्तर में वालिका ने कहा मैं स्वामिनी श्री राविका की सहचरी हूँ । इस समय आप निज श्वसुरालय जावट में विराजमान । कुछ शुद्ध कार्य में निवृद्धा है अतः प्रियतम श्रीकृष्णार्थ फून लेने के लिये मुझे भेजी है । ऐसी कहती हुई वह अन्तर्द्वार हो गई । पण्डितों ने चक्रवर्तीजी को देखा तथा उनके चरणों में गिर कर क्षमा प्रार्थना की चक्रवर्ती जी के विषय में इस प्रकार अनेक अलौकिक बातें सुनने में आती हैं । गोविन्दभाष्य के रचयिता, प्रसिद्ध ब्रजदेव-वद्याभूषणजी आपके भक्ति साधना के शिष्य थे । उन्हीं की शक्ति सञ्चार से विद्याभूषण जी विद्वत् शिरोमणि होकर जयपुर में विरोधी पण्डित समाज में विजय पताका फहरायी । उस समय समस्त ब्रजमण्डल में चक्रवर्तीजी की यशः श्रवण पताका उड़ रही थी तथा समस्त ब्रजमण्डल गौड़ीयों का अड्डा बन गया था । उधर जयपुर भी गौड़ीयों का एक केन्द्रीय स्थान बन चला क्योंकि ब्रज के गौड़ीय आचार्यों के स्थपित समस्त त्रिग्रह प्रायः वहाँ पहुँच गये थे । श्रीरूप के गोविन्द, श्रीमधुपण्डित के गोपीनाथ, श्रीसनातन के मदनमोहन (ये तीन पहले ब्रजनाभजीके द्वारा स्थापित हैं) श्रीनीलके राधादामोदर, जय-

देवजी के ठाकुर श्रीराधामाधवजी, श्रीलोकनाथ के राधाविनोदजी, श्रीगोकुलानन्द जी यवनों के अत्याचार से ब्रज छोड़कर जैपुर में चले गये थे। अतः जयपुर में गौड़ीयों का अड़्डा बन जाना स्वाभाविक था। उस समय गौड़ीयों के प्रभाव से असहनीय होकर कुछ पण्डित विपक्षी बन गये तथा गौड़ीयों के विरुद्ध नाना प्रकार के बात-वितण्डा उठाने लगे। शेष में बलदेवजी विद्याभूषण वहाँ जाकर विरोधियों को पराजित कर अपनी विजयपताका फहरायी। उसी समय गोविन्दजी की आज्ञा से ग वन्दभाष्य की रचना हुई। विरोधियों के द्वारा निष्कासित श्रीजी विग्रह पुनः गोविन्दजी के वातभाग में विराजमान हुई। विरोधी पण्डितों ने जयपुर महाराज को क्युक्ति देकर यह समझाया था कि “श्रीराधिका तो ग्वालिनी है अतः गोविन्दजी के बामभाग में रहना अर्वाधिक है”। महाराज ने उनके इस युक्ति में आकर श्रीजी को वहाँ से हटा कर अन्यत्र विराजमान करवाया था वह वात घक्रवर्तीजी के पास पहुँची। वे सुनकर हंसने लगे एव कहने लगे कि श्रीजी गोविन्दजी से मानिनी ही कर अन्यत्र रूठ गयीं। मान टूट जाने पर पुनः आज्ञावेगी। विश्वनाथजी उस समय राधाकुण्ड में तिनास करते थे, उन्होंने ब्रज से बाहिर न जाने की प्रतिज्ञा ले ली थी।

जयपुर के गौड़ीय वैष्णवों के द्वारा विचार कराने के लिये आहूत होने पर भी वाद्व्यक्तता के कारण नहीं जा सके, परन्तु उन्होंने अपने छात्र बलदेव विद्याभूषणजी को शक्ति संचार कर विचारार्थ भेजा। उसी समय गलता स्थान में माध्वगौडेश्वर सम्प्रदाय का अन्य तीनों सम्प्रदाय के साथ आचार्य्य खम्भ गढ़ा। जो कि विरोधियों के द्वारा कुछ काल के लिये छिन्न भिन्न कर दिया गया था।

गीताश्रम गोरखपुर से प्रकाशित कल्याण पत्रिका वेदान्ताक पृ० ६९७ में (जिसके सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दारजी हैं) विश्वनाथ चक्रवर्ती जी को निर्भारक सम्प्रदाय अन्तर्गत होना बतलाया गया है। शायद सम्पादक की

अ वधानतासे यह हुआ है । हमने इस विषय में सम्पादक महोदयको एक पत्र दिया था, उत्तरमें ५-१०-४६केपत्रमें उन्होंने बतलायाकि आगे जबकभी वेदान्तांक निकलेगा तब इसका संशोधन होगा । किसी अंक में किसी से संशोधन किया भी गया परन्तु उसमें अधिक अनवधानता दिखलाई गयी । दो चक्रवर्तीजी की सृष्टि हो गई । जिससे अत्यन्त कष्ट कल्पना हुई । हाल में—बलदेव अधिकारी राधाकान्त मन्दिर मथुरा ने श्रीयमुनास्तोत्र नाम से एक पुस्तक का प्रकाशन किया है । उसके ५५ पृष्ठ पर विश्वनाथ चक्रवर्ती जी को निम्बार्की बतलाया गया है, जिसका लेखक बलदेव दास अधिकारी है । विषय “सम्प्रदाय के कुछ एक प्रसिद्ध आचार्य” है । जिसमें ७ महापुरुषों का उल्लेख है । ७ संख्या में विश्वनाथ चक्रवर्ती जी का उल्लेख है । यह एक अधिक भूल है । अगर भ्रम वशः लिखा गया तो लेखक तुरन्त ही अपना भ्रम का संशोधन कर दे । ‘आपने भागवत पर टीका लिखी है’ यह भी परिचय में कहा गया है ।

श्रीमद्भागवत के टीकाकार विश्वनाथचक्रवर्तीजी महाप्रभुचैतन्यदेव के उपासक, गौड़ीय सम्प्रदाय के एक निष्ठ आचार्य, परकीयावादी, रागमार्ग के पथिक, शुद्ध ब्रज उपासक हैं । उधर निम्बार्कीय आचार्यगण द्वारिका ब्रज दोनों के उपासक, स्वकीयादी, विधिमार्ग के पथिक, मिश्रित ब्रज उपासक हैं । गौड़ीयों का दार्शनिक सिद्धान्त “अचिन्त्य भेदाभेद” तथा निम्बार्कीयों का “स्वाभाविक भेदाभेद” वाद है । विद्वत्वर बलदेव उपाध्याय ने भारतीय दर्शनमें केवल “भेदाभेद” इस शब्द मात्रको देखकर गौड़ीयोंका भेदाभेद निम्बार्कीयों का आधार पर ऐसा लिख दिया है । परन्तु उन्होंने स्वाभाविक तथा अचिन्त्य शब्द का विरोधत्व अर्थात् दोनों में आकाश पाताल भेद है उसे देखा नहीं । श्रीजीव ने स्वाभाविक भेदाभेद वाद का सर्व सम्वादिनी में खण्डन किया है । गौड़ीय सम्प्रदाय के दार्शनिक भित्ति का स्थापक श्रेष्ठतम आचार्य श्रीजीव गोस्वामी जी हैं । खण्डित बचन कभी आधार रूप नहीं माना जाता है । आपने सर्व सम्वादिनी में कहा है—“भेदाभेदवादे तु ब्रह्मण्येवोपाधि-संसर्गात्तत्प्रयुक्ता जीवगतदोषा ब्रह्मण्येव प्रादुःयुरिति निर्दोषरूपगुणगुणह्यो-

पदेशाविरोधादेव पणित्यक्ताः स्युः । स्वाभाविकभेदाभेदादे तु ब्रह्माणः स्वत एव जीवभावाभ्युपगमात् दोषाश्च स्वाभाविका भवेयुरिति पूर्वत्रेव दोषाः” ॥

उपासना विषय पर प्रस्तुत रागवर्त्म बद्धिका में चक्र तीं जी कहते हैं कि

“तानि चाचर्चनभक्तावहं ग्रहोपासनामुद्रा-न्यास-द्वारकाध्यान—हविम-
प्यादि पूजादीनागमशास्त्रविहितान्यपि नैव कार्यणि” पृष्ठ—१०

स्वयं रूपगोस्वामिजी ने भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ में कहा है—

“रिरंसां सुष्ठु कुर्वन् यो विधिमार्गेण सेवते ।

केवलेनैव स तदा महिषीत्वमियात् पुरे” ॥

“अहं ग्रहोपासना-न्यास—मुद्रा-द्वारकाध्यान-महिष्यचर्चनादीन्यपि रा-
काणि न कर्तव्यानि” । पृष्ठ—१६

“तत्र विधिमार्गेण राधाकृष्णयोर्भजने महाविकुण्ठगोलोके खल्वविविक्त
स्वकीयापरकीयाभावमैश्वर्यज्ञानं प्राप्नोति । मधुरभावलोभित्वे सति विधि-
मार्गेण भजने द्वारकायां श्रीरधासत्यभामयोरैवयात् सत्यभामापरिकरत्वेन
स्वकीयाभावमैश्वर्यज्ञानमिश्रमाधुर्यज्ञानं प्राप्नोति । रागमार्गेण भजने ब्रज-
भूमौ श्रीराधापरिकरत्वेन परकीयाभावं शुद्धमाधुर्यज्ञानं प्राप्नोति” । पृष्ठ—१६

गौड़ीय सम्प्रदाय की उपासनाति रागमार्ग को लेकर चलती है,
जिसको स्वारसिकी उपासना कहते हैं । यह राग मन का धर्म है जो मानसिक
सेवा रूप से केवल विशुद्ध सत्वमय मन में संचालित होता है ।

मन्त्रणयो उपासना तो विधिको लेकर चलती है । श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा है—

“मने निज सिद्ध देह करिया भावन ।

वेदान्तस्पमन्तक में बलदेवजी ने कहा है—

“स च पुरुषोत्तमः क्वचिद्विभुजः क्वचिच्चतुर्भुजः [क्वचिदष्टभुजश्च
पठ्यते ।] आनन्दाक्षयसंहितायान्तु रूपत्रयमुक्तं “स्यूनमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं
चर्ब चतुर्भुजं । परन्तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतन्नयं यजेत्” । “तेषु चारुताधि-
भयात् कृत्स्नव्यक्तेश्च द्विभुजस्य परत्वमुक्तं”

निम्नार्की आचार्यों ने द्वारका उपासना को ही प्राधान्यता दी है जो
कि गौड़ीयों के रागमार्ग में अपकारक रूप माना जाता है ।

जैसा कि—आचर्य्यं [धुरन्धर पुरुषोत्तमाचार्य्यं] ने "अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदां विराजमानामनुरूपसौभगां"

इस दशश्लोकी पद्य भाष्य में निराण्य दिया कि—

"तथा च रुक्मिणीसत्यभामाव्रजस्त्रीविशिष्टः श्री भगवान् पुरुषोत्तमो बासुदेवः साम्प्रदायिभिर्वैष्णवैः सदोपासनीयः । द्विभुजश्चतुर्भुजश्च स्वप्रीत्यनुरूपेणोभयविधत्वात् तस्य नात्र तारतम्यभावः" ।

आगे—“उभयविधस्यापि ध्यानस्य मोक्षहेतुत्वश्रवणादुभयस्य तुल्यफलत्वाद्ध्येयत्वाऽविशेष इति सांप्रदायराद्धान्तः”

इस प्रकार उपासनामार्ग में गौड़ीय-निम्बार्कीयों का आकाश पाताल भेद है । अतः उपाध्यायजी को गौड़ीय सम्प्रदाय को निम्बार्क सम्प्रदाय के आधारीभूत मान लेना निराधार ठहरता है ।

अस्तु प्रस्तुत प्रकाशन में रागवत्स चन्द्रिका, उज्वलनीलमणिकिरण, वृहद्भागवतामृतकण ये चक्रवर्तीजी के तीनों ग्रन्थ एकही साथ मुद्रित किये जाते हैं । रागवत्स चन्द्रिका रागमार्ग का एक महान् उपादेय ग्रन्थ है, इसमें संक्षेपतः रागमार्ग का अद्भुत चित्रण किया गया है । इससे राग तत्त्व का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाता है । बृन्दावन चारि सम्प्रदाय आश्रम से श्रीमान् बन्धुवर रामदास शास्त्रीजी द्वारा चक्रवर्तीजी के भक्तिसामृतसिन्धु, वृहद्भागवतामृतकण, माधुर्य्यकादम्बिनी ये तीन ग्रन्थ एक ही साथ सानुवाद देवनागरीलिपी में पहले प्रकाशित हो चुके हैं । उसी उमय हमारी प्रबल इच्छा हुई थी कि रागमार्गचन्द्रिका सा अद्भुत ग्रन्थ का अद्वय देवाक्षरों में प्रकाशन होना चाहिये । अतः मैंने तुरन्त ही उसका अनुवाद कर लिया था । परन्तु जब कि उसका प्रकाशन समय नहीं आने पाया था । जयपुर गीर्जगढ़ निवासी, भक्त प्रवर, महान्प्रेमी श्रीमान् कुशलसिंहजी उस अनुवाद को प्रकाशित कराने के लिये जयपुर ले गये मैं भी बहुत आग्रह के साथ उनको मूल ग्रन्थ का देवाक्षर में लिख कर उसके साथ वह अनुवाद दे दिया । उनकी अस्वस्थता के कारण उस कार्य्य से कुछ विलम्ब हो गया एवं मेरा भी उन दिनों में जयपुर नहीं

जाना हुआ । उधर उन महान् आत्मा का तिरोधान हो गया । आप नित्यधाम में पहुँच गये । अतः ग्रन्थ प्रकाशन में महान् बाधा पहुँच गयी । यह प्रभु की इच्छा मान कर चुप-चाप रहा । अब उसका समय आ गया । उक्त महान् आत्मा के सुयोग्य पुत्र, श्रीमान् मानघातासिंहजी ने उस अनुवाद सहित मूल ग्रन्थ को हमारे पास भेज दिया साथ ही प्रकाशनार्थ धन की सहायता भी दे दी । जब कि ग्रन्थ प्रेस में छप गया तब मेरा विचार हुआ कि इसके साथ उज्वलनीलमणि किरण का प्रकाशन हो जाना चाहिये जो कि अक्तभारत पत्रिका के सम्पादक रामदासशस्त्री के द्वारा प्रकाशित में वह कार्य वाकी रह गया । इसका अनुवाद करने में प्रवृत्त हुआ, परन्तु मैंने सोचा जब कि पूर्वाचार्य रसिकदासजी के द्वारा किये हुए उज्वलनीलमणिकिरण एवं बृहद्भागवतामृतकरण के पद्यबन्ध प्राचीन अनुवाद हमारे पास मौजूद है तो मैं स्वतन्त्र रूप से इसका अनुवाद क्यों करूँ । अतः अनुवाद करने में निवृत्त हुआ एवं रसिक दासजी के द्वारा किये हुए दोनों ग्रन्थोंके अनुवाद का प्रकाशनार्थ तत्पर हुआ । रसिकदासजी के दोनों अनुवाद बहुत सुन्दर एवं सरल है । आप ने बड़ी चाह के साथ सम्प्रदाय भेद भाव भूल कर दोनों का अनुवाद किया है । यह एक महाप्रभु की कृपा ब उस समय रसिक शिरोमणि रसाचार्य महान् विद्वान् महाप्रभु के परिकररूप में प्रकट श्री चक्रवर्तीजी की कृपा का अद्भुत परिचायक है । उन्होंने स्वयं ऐसा लिखा है । श्रीयुत रसिकदासजी श्रीलगोस्वामी हरिवंशजी के अनुगत ब्रजभाषा के एक महान् कवि माने जाते हैं । उन्होंने दोनों ग्रन्थों के प्रारम्भ में अपने उपजीव्य चरण श्री हरिवंश गोस्वामी जी का वन्दना रूप मंगलोचरण किया है । इधर चक्रवर्ती जी के ऊपर उन की अटूट श्रद्धा थी । उन्हीं की कृपा-स्फूर्ति लेकर आपने इन दोनों ग्रन्थों का अनुवाद किया है । अस्तु रसिकसमाज इन ग्रन्थों का सरस आस्वादन करेगा ।

❀ रागवर्त्मचन्द्रिका ❀

प्रथमः प्रकाशः

—* * *—

श्रीरूपवाक् सुधास्वादिककोरंभ्यो नमो नमः ।

येषां कृपालवैर्बद्धये रगवर्त्मनि चन्द्रिकाम् ॥ १ ॥

उन श्रीरूपगोस्वामी के वचन सुधा आस्वादनकारी भक्त-
चकोर समूह का पुनः पुनः जमस्कार करता हूँ कि जिनकी कृपा
कणिका को लाभ करके मैं विश्वनाथ चक्रवर्ती "रागवर्त्मचन्द्रिका"
नामक इस ग्रन्थ की रचना में समर्थ हो रहा हूँ ॥ १ ॥

श्रीमद्भक्तिमुयाम्मोधेर्विन्दुर्यः पूर्वदर्शितः ।

तत्र रागानुगा भक्तिः संक्षिप्तात्र बितन्यते ॥ २ ॥

मैंने पहले "भक्तिरसामृतसिन्धुविन्दु" नामक ग्रन्थ की
रचना की थी उसमें रागानुगाभक्ति का संक्षेप में वर्णन किया है ।
अब इस रागवर्त्मचन्द्रिका ग्रन्थ में उसी का विस्तार के साथ वर्णन
करता हूँ ॥ २ ॥

वैधीभक्तिभवेत् शास्त्रं भक्तौ चेत् स्यात् प्रवर्त्तिकम् ।

रागानुगा स्याच्चेद्भक्तौ लोभ एव प्रवर्त्तिकः ॥ ३ ॥

जिस भक्ति का प्रवर्त्तिक शास्त्र होता है उसे "वैधी",
भक्ति कहते हैं तथा जिस भक्ति का प्रवर्त्तिक लोभ होता है उसे
"रागानुगा" कहते हैं ॥ ३ ॥

भक्तौ प्रवृत्तिरत्र स्यात्तच्चिकीर्षा सुनिश्चया ।

शास्त्रल्लोभात्तच्चिकीर्षु स्यात्ता दधधिकारिणौ ॥ ४ ॥

“श्रीकृष्ण-भजन अवश्य कर्तव्य है, नहीं तो मदान् प्रत्यवाय हो सकता है” इस प्रकार शास्त्रशासन के भय से जिसकी श्रीकृष्ण भजन में प्रवृत्ति होती है वह वैधी भक्ति का अधिकारी है तथा श्रीकृष्ण के माधुर्य-सौन्दर्यादि गुणों को श्रवण कर उनमें लोभ उत्पन्न होने के पश्चात् श्रीकृष्ण भजन में जिसकी प्रवृत्ति होती है वह रागानुगा का अधिकारी कहा जाता है । तात्पर्य—भजन नहीं करने पर पाप होता है यह शास्त्र का शासन है । अतः उस भय से भजन में इच्छुक होकर साधनादि करने वाले को (प्रथम) अधिकारी कहा जाता है । श्रीकृष्ण के माधुर्यादि सुन कर तथा उनकी प्राप्ति के लिये लोभी होकर भजन में जो प्रवृत्त होता है वह दूसरा (रागानुगा) के अधिकारी है ॥ ४ ॥

तत्र लोभो लक्षितः स्वयं श्रीरूपगोस्वामिचरणैरेव—

“तत्तद्भावादिमाधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते ।

नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम् ॥

श्रीरूपगोस्वामीचरण ने स्वयं ही लोभ का इस प्रकार निर्देश किया है—“उन भावों के माधुर्य का श्रवण गोचर होने पर उसकी प्राप्ति के लिये बुद्धि उत्सुक हो जाती है तब भक्त उस विषय में शास्त्र अथवा किसी युक्ति की अपेक्षा नहीं करता है, यह लोभोत्पत्ति का लक्षण है ।

ब्रजलीलापरिकरस्थशृङ्गारादिभावमाधुर्ये श्रुते धीरिदं मम भूयात् इति लोभोत्पत्तिकाले शास्त्रयुक्त्यपेक्षा न स्यात्

सत्याञ्च तस्यां लोभत्वस्यैवास्ति द्वेः । नहि केनचित् शास्त्रदृष्ट्या
लोभः क्रियते न पि लोभनीयवस्तुप्राप्ती स्वस्य योग्यायोग्यत्वविचारः
कोऽप्युद्भवति किन्तु लोभनीयवस्तुनि श्रुते दृष्टे वा स्वत एव लोभ
उत्पद्यत ॥ ५ ॥

पहले श्र कृष्ण के ब्रजलोला परिकरों के शृङ्ग रादि भावों
का माधुर्य्य सुनकर हृदय में “उस प्रकार के भाव मुझे किस
प्रकार लाभ हो सकेंगे ” ऐसा लोभ उत्पन्न होता है इस प्रकार से
लोभ के उत्पन्न होने पर उसकी बुद्धि शास्त्र अथवा किसी युक्ति
की अपेक्षा नहीं करती है, क्योंकि जहाँ शास्त्र अथवा युक्ति की
अपेक्षा रहती है वहाँ लोभ की सिद्धि नहीं हो सकती । कोई
शास्त्र देखकर कभी लाभ नहीं करता अर्थात् लाभ की प्रत्याशा
में कोई कभी शास्त्र आलाचना नहीं करता । लोभनीय वस्तु-प्राप्ति
के लिये भी कभी कोई अपने में योग्य-अयोग्यता का नहीं देखता
अर्थात् इसकी प्राप्ति में मेरी योग्यता है अथवा नहीं इसका
विचार नहीं करता । वस्तुतः लोभनीय वस्तु जब श्रवण अथवा
दृष्टि में गोचरीभूत होती है तब लोभ स्वतः ही उत्पन्न होता है ॥५

सच भगवत् कृपाहेतुकोऽनुरागिभक्तकृपाहेतुकश्चेति द्विविधः ।
तत्र भक्तकृपाहेतुको द्विविधः प्राक्तन आधुनिकश्च । प्राक्तनः पौर्व्व-
भविकतादृशभक्तकृपोत्थः । आधुनिकः—एतज्जन्माबधितादृशभक्त-
कृपोत्थः । आद्ये सति लोभानन्तरं तादृशगुरुचरणाश्रयणम् ।
द्वितीये गुरुचरणाश्रयणानन्तरं लोभप्रवृत्तिर्भवति । यदुक्तम्—

“कृष्णतद्भक्तकारुण्यमात्रलोभैकहेतुका ।

पुष्टिमागंतया कैश्चिदिय रागानुगोच्यते” ॥ ६ ॥

वह लोभ फिर “भगवत्कृपाहेतुक” तथा “अनुरागिभक्त-
कृपाहेतुक” भेद से दो प्रकार होता है । “भक्तकृपाहेतुक” लोभ

फिर प्राक्तन-आधुनिक भेद से दो प्रकार का है। जन्मान्तरीय भक्तकृपाजनित लोभको प्राक्तन तथा वर्तमान जन्म में भक्तकृपा-जनित लोभ को आधुनिक कहा जाता है। जिस का प्राक्तनलोभ मौजूद है वह लोभ स्फूर्ति होने के पश्चात् अनुरागी गुरु का चरणाश्रय करता है। जिसका प्राक्तन लोभ नहीं है वह अनुरागी गुरुचरणाश्रय के पश्चात् लोभ की प्राप्ति करता है। शास्त्र में कहा गया है—केवल श्रीकृष्णकृपा से तथा उनके भक्तजनों की कृपा से उत्पन्न जो लोभ है वह राग मार्ग प्रवृत्ति का एकमात्र मूल कारण है। इस रागमार्ग को कोई-कोई पुष्टिमार्ग भी कहते हैं ॥६

ततश्च तादृशलोभवतो भक्तस्य लोभनीयतद्भावप्राप्त्युपाय-जिज्ञासायां सत्यां शास्त्रयुक्त्यपेक्षा स्यात् । शास्त्र विधिनैव शास्त्रपतिपादितयुक्त्यैव च तत्प्रदर्शनात् नान्यथा । यथा दुग्धादिषु लोभे सति कथं मे दुग्धाकिकं भवेदिति तदुपायजिज्ञासायां तदभिज्ञानजनकलोपदेशवाक्यापेक्षा स्यात् । ततश्च गां क्रीणातु भवान् इत्यादि तदुपदेशवाक्यादेव गवानयनतद्घास-प्रदानतद्दोहनप्रकरणादिकं तत एव शिचेन्न तु स्वतः, यदुक्तमष्टम-स्कन्धे—

‘यथाग्निमेधस्यमृतञ्च गोषु भुज्यन्नमस्वूद्यमने च वृत्तिम् ।
योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि तां गुणेषु बुद्ध्या कवयो विदन्ति ॥७

अनन्तर, इस प्रकार के लोभ प्राप्त भक्त की उस लोभनीय भाववस्तु-प्राप्ति के उपाय जानने की इच्छा होती है, अतः उस अवस्था में भक्त की शास्त्र अथवा युक्ति की अपेक्षा देखने में आती है। क्योंकि केवल शास्त्रविधि अथवा शास्त्र प्रतिपाद्य युक्ति के द्वारा ही उस उपाय का प्रदर्शन होता है, अन्य किसी के द्वारा नहीं है। जैसा कि किसी का दुग्धादि वस्तु की महिमा सुन

कर लोफ उत्पन्न हुआ, पश्चात् “मैं किस प्रकार दुग्धादिवस्तु को प्राप्त करूँ” इस प्रकार प्राप्ति उपाय जानने के लिये उसकी इच्छा होती है। अतः उस समय उत्रने उस विषय में अभिज्ञ किसी मान्यव्यक्ति की अपेक्षा की। “तुम गौ लाओ” विश्वस्त मान्य के द्वारा इस प्रकार उपदेश पाकर वह गौ लाया तथा उसको तृणादि से तृप्त किया एवं किसी विश्वस्त जन से गो दोहनादि की विधि सीखी। उपदेश के बिना स्वयं कोई कुछ नहीं कर सकता। श्रीभागवत अष्टमस्कंध में कहा है—मनुष्य जिस प्रकार उपाय-परम्परा के द्वारा ही काष्ठ से अग्नि, गौ से दुग्ध, पृथ्वी से अन्नदि वस्तुओं को अपने पुरुषाकार, अर्थात् निज चेष्टा के द्वारा लाभ करता है ठीक उसी प्रकार हे भगवान् ! आपके गुणों को बुद्धि के द्वारा लाभ किया जाता है, इस प्रकार अभिज्ञगण कहते हैं ॥ ७ ॥

सच लोभो रागवर्त्मवर्तिनां भक्तानां गुरुपादाश्रयलक्षणप्रारभ्य स्वाभीष्टवस्तुसात्त्वात्प्राप्तिसमयमभिव्याप्य “यथायथात्मा परिमृज्यतेऽसौ भत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः तथा तथा पश्यति वस्तुसूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम् ॥” इति भगवदुक्तेभक्तिहेतुकान्तः करणशुद्धितारतम्यात् प्रतिदिनं अधिकाधिको भवति ॥८॥

बहु लोभ रागमार्गवर्ती-भक्तों के गुरुचरणश्रय से लेकर अभीष्ट वस्तु साक्षात्कार पर्यन्त उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। “मेरी पवित्र-कथा श्रवण अथवा कीर्तनादि के द्वारा चित्त जिस प्रकार उत्तरोत्तर परिमार्जित होता है, काँजर से लिप्त नेत्र जिस प्रकार अपने परिष्कार के अनुसार उत्तरोत्तर सूक्ष्मवस्तु का अवलोकन करता है ठीक उसी प्रकार भक्त सूक्ष्मवस्तु के दर्शन में उत्तरोत्तर समर्थ होता है” इस प्रकार भगवद् वचन के अनुसार साधन

भक्ति के द्वारा जिस परिमाण से चित्त शुद्ध होता रहता है ठीक उसी परिमाण से लोभ को उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ॥८॥

उद्भूते तादृशे शास्त्रदर्शितेषु तत्तद्भावप्राप्त्युपायेषु
 “आचार्य्यच यत्पुषा स्वर्गतिं व्यनक्ति” इत्युद्धवोक्तेः, केषुचिद्गुरु-
 मुखात् केषुचिदभिज्ञप्रहोदयानुरागिभक्तमुखत् अभिज्ञानेषु
 केषुचिद्भक्तिमृष्टचित्तवृत्तिषु स्वत एव स्फुरितेषु साल्लासमेत-
 तिशयेन प्रवृत्तिः स्यात् यथा कामोथिनां कामोपायषु ॥९॥

तदनुसार लोभ को उत्पत्ति होने पर रागानुगाय भक्त की शास्त्र प्रदर्शित उन लोभनीयवस्तुओं की प्राप्ति के उपाय समूह में उल्लास के साथ अतिशय प्रवृत्ति होती है । “आप बाहिर गुरुरूप से उपदेश के द्वारा तथा अन्तर में अन्तर्ग्यामी रूप से सत् प्रवृत्ति के द्वारा मनुष्यों को विषयवासना दूर करते हुए अपने स्वरूप का प्रकाश करते रहते हैं” इस प्रकार उद्धवजी के वचन के अनुसार किसी का गुरुमुख से या किसी का अभिज्ञ अनुरागी भक्त के मुख से लोभनीय वस्तु का अभिज्ञान हाता है । किसी को भक्ति के द्वारा परिमार्जित चित्तवृत्ति में स्वतः ही स्फूर्ति हाती है, जिस प्रकार कामियों की कामोपाय में स्वतः प्रवृत्ति होता है ठीक उसी प्रकार यह जानना चाहिये ॥ ९ ॥

तच्च शास्त्रं सर्वोपनिषत् सारभूतं, येषामहं प्रिय आत्मा
 मुतश्च सखा गुरुः सुहृदो देवमिष्टमित्यादिवाक्यनिचयाकर-
 श्रीभागवतमहापुराणमेव । तथा तत्प्रतिपादितभक्तिविवरणचञ्चु-
 श्री भक्तिरसामृतार्णवादिकमपि । तत्रत्यं वाक्यत्रयं यथा—

‘कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमोहितम् ।

तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्याद्वासं ब्रजे सदा ॥” इति

“सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण च त्र हि ।
 तद्भावलिप्सुरा काय्या ब्रजलोकानुसारतः ॥” इति
 “श्रवणोत्कीर्त्तनादीनि वैधौ भक्त्युद्दानि तु ।
 यान्यङ्गानि च तान्यत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः ॥” इति

त्रिकमत्र कामानुगापत्ते एव व्याख्यायते ॥ १० ॥

अब यहाँ प्रष्टव्य है कि इस प्रकार लोभविशिष्ट भक्त का अपेक्षणीय (आबश्यकीय) क्या है ? उत्तर में कहते हैं—
 समस्त उपनिषद् का सार स्वरूप श्रीमद्भागवत नामक महा-
 पुराण ही इस विषय का परमशास्त्र है, जो कि “मैं जिनके प्रिय,
 आत्मा, पुत्र, सखा, गुरु, बन्धु, देवता तथा इष्ट हूँ ” इत्यादि
 वचनों का आधार अर्थात् भण्डार रूप है । तात्पर्य—ये सब
 वचन रागमार्ग में परिपोषक हैं तथा भागवत में इस प्रकार के
 हजारों वचन मौजूद हैं । श्रीभागवत प्रतिपादित भक्ति का जिस
 में सविस्तार वर्णन है उन भागवतोपकारक अर्थात् भागवतशास्त्र
 के परिपोषक “भक्तिरसामृतसिन्धु” आदिक ग्रन्थसमूह भी
 रागानुगीय भक्त को अपेक्षणीय हैं । भक्तिरसामृतसिन्धु नामक
 ग्रन्थ में ये तीनों वचन मौजूद हैं कि—(१) “प्रियतम श्रीकृष्ण
 तथा अभिलाषा उनके प्रियतमों का स्मरण पराधरण होकर
 कथा में अनुरक्त हो निरन्तर ब्रज में वास करें” (२) उस
 लोभनीय वस्तु के अभिलाषी-जन इस राग मार्ग में अकार ब्रज-
 वासियों का अनुसरण करते हुए साधक रूप तथा सिद्धरूप दोनों
 प्रकार की सेवा में रत होयें ।” और ३। वैधीभक्ति में जो-जो
 श्रवण-कीर्त्तनादि अङ्ग कहे गये हैं उन सबको इस रागानुगा-
 भक्ति में भी अङ्ग रूप से जानना चाहिये । ये तीनों वचन
 (समस्त) रागानुगापत्त में कहे गये हैं । मैं इन तीनों वाक्यों की

लोभवान्भक्त की शिक्षा के लिये केवल काम-नुगापक्ष की ही व्याख्या करूँगा ॥ १० ॥

प्रथमतः कृष्णं स्मरन् इति स्मरणस्यात्र रागानुगायां मुख्यत्वं रागस्य मनोधर्मत्वात् । प्रेष्टं निजभावोचितलीला-बिलासिनं कृष्णं वृन्दावनाधीश्वरम् । अस्य कृष्णस्य जनञ्च कीदृशं निजसमीहित स्वाभिलषणीयं श्रीवृन्द-बनेश्वरीललिता-विशाखा श्रीरूपमञ्जर्यादिकम् । कृष्णस्यापि निजसमोदितत्वेऽपि तज्जनस्य उज्ज्वलभावैकनिष्ठत्वात् निजसमीहितत्वाधिक्यम् ब्रजे वासमिति असामर्थ्ये मनसापि । साधकशरीरेण वासस्तु उत्तर-श्लोकार्थतः प्राप्त एव । साधकरूपेण यथावस्थितदेहेन । सिद्धरूपे-णान्तश्चिन्तितभोष्टतत्साक्षात्कारसेवोपयोगिदेहेन । तद्भावलि-प्सुना-तद्भावः स्वप्रेष्टकृष्णविषयकः स्वसमीहितकृष्णजनाश्रयकश्च यो भावः उज्ज्वलाख्यस्तं लब्धुमिच्छता । सेवा मनसैवापस्थापितैः साक्षादप्युपस्थापितैश्च समुचिद्द्रव्यदिभिः परिचर्या कार्या । तत्र प्रकारमाह—ब्रजलोकानुसारतः साधकरूपेणानुगम्यमाना ये ब्रजलोकाः श्रीरूपगोस्वाम्यादयः ये च सिद्धरूपेणानुगम्यमानाः ब्रजलोकाः श्रीरूपमञ्जर्यादयस्तदनुसारतः । तथैव साधकरूपेणानुगम्यमाना ब्रजलोकाः प्राप्तकृष्णसम्बन्धिनो जनाश्चन्द्रकान्तादयः दण्डकारण्यवासिमुनयश्च बृहद्बामनभसिद्धाः श्रुतयश्च यथा-सम्भवं ज्ञेयाः । तदनुसारतस्तत्तदाचारदृष्ट्येत्यर्थः । तदेवं वाक्य-द्वयेन स्मरणं ब्रजवासञ्च उक्त्वा श्रवण दीनप्याह—श्रवणो-त्कीर्त्तनादीनिति । गुरुपादाश्रयणादीनि त्वाक्षेपलब्धानि । तानि बिना ब्रजलोकानुगत्यादिकं किमपि न सिध्येदित्यतः मनीषिभिरि-ति मनीषया विमृश्यैव स्वीयभावसमुचितान्येव तानि कार्याणि न तु तद्विरुद्धानि ॥ ११ ॥

पहले “कृष्ण का स्मरण करते हुए” इस वचन की

व्याख्या कहते हैं। 'स्मरण परायण होकर' यहाँ स्मरण की रागानुगा में प्रधानता है। "राग" मन का धर्म है। स्मरण भी मन के द्वारा होता है। प्रेष्ठ शब्द का अर्थ निज-भावोचित लीला-विलासी प्रियतम श्रीकृष्ण हैं, जो कि बृन्दावन के अधीश्वर हैं। उन श्रीकृष्ण के जन किस प्रकार के हैं? उत्तर में कहते हैं— निजसमीहित अर्थात् निज अभिलषणीय, श्रीबृन्दावनेश्वरी राधिक-ललिता-विशाखा-श्रीरूपमञ्जरी आदिक प्रिय परिजन हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण निज अभिलषणीय है तो भी यहाँ उनके प्रिय-जनों में ही अभिलषणीयत्व का आधिक्य दिखलाया गया है। क्योंकि उज्वलभाव में उनकी एकान्तनिष्ठा मौजूद है। "ब्रज में वास करे" यहाँ असामर्थ्य होने पर मानस में ही सर्वदा वास कर सकता है। साधक शरीर में वास उत्तर वचन के अर्थ से अवगत होता है। साधकरूप से इस का अर्थ—“यथावस्थित कृष्णदास-रामदास दि शरीर से है।” सिद्धरूप का अर्थ—“अन्तर में चिन्तनीय निज अभीष्ट श्रीकृष्ण के साक्षात् सेवोपयोगी मञ्जरी आदिक देह से है।” उस भावलिप्सु का अर्थ—“निज प्रेष्ठ श्रीकृष्णविषयक तथा निजसमीहित श्रीकृष्ण के जनों का आश्रयक रूप जो उज्वलाख्य भाव है उसकी प्राप्ति के लिये इच्छुक होकर।” सेवा का अर्थ—“मानस में संगृहीत तथा साक्षात् में संगृहीत यथायोग्य द्रव्यादि के द्वारा परिचर्या।” अब सेवा के प्रकार को कहते हैं—ब्रजवासियों के अनुसरण के द्वारा। साधकरूप का अनुसरण—श्रीरूपगोस्वामी आदिक ब्रजवासियों का तथा वे सब, रूपगोस्वामी आदिक जिन का अनुसरण करते हैं उन श्रीरूप-मञ्जरी आदिक ब्रजजनों का है। जो श्रीकृष्ण को प्राप्त होकर तत् सम्बन्धविशिष्ट हो गये हैं, वे सब साधक रूप से अनुगम्यमान

शास्त्रप्रसिद्ध चन्द्रकान्त और भी दण्डकारण्यवासी मुनिगण आदिक हैं तथा बृहद् वामनपुराण में प्रसिद्ध श्रुतियाँ यथासम्भव हैं । “ब्रजवासियों के अनुसार” अर्थात् उन के ‘सदाचरण देख कर । इस प्रकार दोनों वचनों से स्मरण तथा ब्रजवास कह कर श्रवणादि साधन अङ्ग का तृतीयवाक्य के द्वारा कथन करते हैं । उक्त श्रवण-कीर्त्तनादि के द्वारा गुरुपादाश्रयादि अङ्ग समूह सूचित होते हैं उन सब अङ्गों के साधन के बिना, ब्रजवासियों का अनु-गमन आदि कुछ सिद्ध नहीं हो सकता । इस लिये मनीषिभि शब्द का प्रयोग किया गया है । बुद्धिमान निज बुद्धि के द्वारा विचार करते हुए निज भाव के उपयोगी साधनाँग समूह का आचरण करेंगे । भाव के विरुद्ध किसी आचरण को नहीं करना चाहिये । ११

तानि चार्चनभक्तावहंप्रहोपासना-मुद्रा-न्यास-द्वारकाध्यान रुक्मिण्यादिपूजादीन्यागमशास्त्रविहितान्यपिनैवकार्याणि भक्ति-मार्गेऽस्मिन् किञ्चित् किञ्चित् अङ्गवैकल्येऽपि दोषाभावश्रवणात् । यदुक्तम्—यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित् ।

धाबन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥” इति ॥
‘न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो भङ्गक्तेरुद्धवाणवपि’ ॥ इति च ॥

अङ्गवैकल्ये त्वस्त्येव दोषः । यान् श्रवणोत्कीर्त्तनादीन्-भगवद्भर्मानाश्रित्य इत्युक्तेः । “श्रुतिस्मृति-पुराणादि-पञ्चरात्र-विधिं बिना । ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते ॥ इत्युक्तेश्च । लोभस्य प्रवर्त्तकत्वेऽपि निजभावप्रतिकूलान्युक्तानि सर्वाणि शास्त्रविहितानां त्यागानौचित्यमितिवुद्ध्या यदि करोति तदा द्वारकापुरे महिषीजनपरिजनत्वं प्राप्नोति ।

यदुक्तम्—“रिरंसां सुष्ठुकुर्वन् यो विधिमार्गेण सेवते ।

केबलेनव स तदा महिषोत्वमियात्पुरे ॥”

केबलेनैव कृसेनैव न तु निजभावप्रतिकूलान् महिषीपूजादीन्

कांश्चित् कांश्चिदंशान् परित्यज्येत्यर्थः । “निर्णीते केवलमिति त्रिलिङ्गत्वेककृत्स्नयोः” इत्यमरः । केवलेन विधिमार्गेण पुरे महोषित्वं मिश्रेण मथुरायामिति व्याख्या नोपपद्यते । पुरे यथा महोषित्वं तथा मथुराया किं रूपत्वम् ? कुब्जा-परिकरत्वमिति चेत् केवलवैधीभक्तिफलादपि मिश्रवैधीभक्ति-फलस्य अपरुषः खलु अन्याय एव । “रामानिरुद्धप्रद्युम्न-रुक्मिण्या सहितो विभुः” इति गोपालतापनीश्रुतिदृष्ट्या रुक्मिणीपरिणयो मथुरायामित्यतो रुक्मिणी—परिकरत्वमिति व्याख्या तु न सावर्बलौकिकी । राधाकृष्णोपासकः कथं कुब्जां वा रुक्मिणीं वा प्राप्नोति इति द्वितीयश्चान्यायः । बभ्रुवस्तु लोभ-प्रवर्तितं विधिमार्गेण सेवनमेव रागमर्गं उच्यते विधिप्रवर्तितं विधिमार्गेण सेवनञ्च विधिमार्गं इति । विधिविनाभूतं सेवनन्तु श्रुतिस्मृत्यादिवाक्यादुत्पातप्रापकमेव ॥ १२ ॥

अर्चनाङ्गभक्ति में—अहंप्रहोपासना—मुद्रा—न्यास—द्वारकाध्यान-रुक्मिण्यादि के पूजनादि तन्त्रशास्त्र में विधिरूप से कहे जाने पर भी रागमार्ग के साधक उन का आचरण नहीं करेंगे। क्योंकि ये सब अपने भाव के प्रतिकूल होते हैं। भक्तिमार्ग में कहीं कुछ अङ्गवैकल्य हो जाने पर भी उसमें दोष नहीं होता, ऐसा शास्त्र में कहा गया है। भागवत में कहा है—“हे राजन् ! इस भक्तिमार्ग में ननुष्य जिन भागवतधर्मों का आश्रय करते हुए प्रवर्तमान होता है उन में वह कभी प्रमादप्रस्त नहीं होता है यहाँ तक कि नेत्र मूँदकर इस मार्ग में भागने पर भी वह नहीं गिरता है ।” “हे उद्धव ! भक्तिलक्षित इस परधर्म के उपक्रम में अङ्ग-वैगुण्यादि के आने पर भी किञ्चिन्मात्र भी नष्ट नहीं होता ।” इस प्रकार अर्चनादिभक्ति में अङ्गहानि होने पर कोई दोष नहीं है। परन्तु अङ्गों की हानि हो जाने से अर्थात् अङ्गों के अनाचरण

अथवा अन्याचरण में दोष अवश्य होता है। भागवत में कहा है—अङ्गीरस जो जो भागवत धर्म हैं उनके आश्रय करते हुए यदि अङ्गधर्म की हानि हो उठे तब भी उसमें कोई दोषावकाश नहीं है। अन्यत्र भी शास्त्र में कहा है—श्रुति-स्मृति-पुराण-पञ्चरात्रादि आगमोक्त विधि के बिना जो ऐकान्तिकी हरिभक्ति की जाती है वह अनिष्टकर उत्पात के लिये हैं। यदि कोई लोभ में प्रवर्तित होता हुआ “शास्त्रविहित कर्मों का त्याग करना उचित नहीं है” इस प्रकार बुद्धि से निजभाव के प्रतिकूल द्वारका महिषियों के ध्यानादि अनुष्ठान करता है तब वह रागमार्ग से लब्ध (प्राप्त) ब्रजपरिकरत्व को प्राप्त न होकर द्वारकापुर में महिषियों के परिजन-रूप को प्राप्त करता है। भक्तिरसामृतसिन्धु में कथन है—जो चकृष्ट रमणाभिलाष करते हुए अर्थात् सखी-मञ्जरी भाव को हृदय में रखते हुए केवल विधिमार्ग के अनुसार सेवन करते हैं वे द्वारकापुर में महिषीगणत्व का प्राप्त करते हैं। यहाँ केवल शब्द का तात्पर्य निजभाव प्रतिकूल महिषियों का ध्यानादि सर्वांश में परित्याग करना है। अमरकोष में केवल शब्द का अर्थ कृत्स्न अर्थात् सर्वांश में है ऐसा कथन है। केवल विधिमार्ग से द्वारका में महिषीत्व लाभ होता है तथा रागमार्ग से मिश्रित विधिमार्ग के द्वारा मथुरा में लाभ होता है इस प्रकार की व्याख्या नहीं घट सकती। अच्छा? द्वारकापुरी में महिषीत्व प्राप्त है मथुरा में किम रूप से लाभ है? यदि कहो कि कुब्जापरिकरत्व का लाभ है तब तुम्हारा बचन असङ्गत हो रहा है क्योंकि केवल विधिमार्ग से जो फल है उससे रागमिश्रित विधिमार्ग का फल चकृष्ट होना चाहिये। परन्तु यहाँ अपकृष्ट हो रहा है। यदि कहो कि गोपालतापनी के अनुसार रुक्मिणीपरिणय मथुरा में सिद्ध है। अतः मथुरा में रुक्मिणीपरिकरत्व लाभ होता है। यह भी सङ्गत

नहीं है। क्योंकि मथुरा में रुक्मिणीपरिकरत्व सर्वानुभोदित नहीं है। ऐसा स्वीकार करने पर भी इष्टसिद्धि न होकर अनिष्ट आ पड़ेगा। “राधाकृष्ण की उपासना करते हुए कुन्तापरिकर। कम्बा रुक्मिणीपरिजन को प्राप्ति करता है” यह एक दूसरा अन्याय खड़ा होता है। वस्तुतः लोभप्रवर्तित विधिभार्ग के द्वारा सेवन रागभार्ग तथा विधिप्रवर्तित विधिभार्ग के द्वारा सेवन विधिभार्ग है। विधिके बिना सेवन अगुभजन है अतः “श्रुति-स्मृति-पुराणादि के बिना” यह शास्त्रवचन घटता है ॥ १२ ॥

अथ रागानुगाया अङ्गान्यन्यानि भजनानि कानि कानि कीदृशानि किं स्वरूपाणि कथं कर्त्तव्यानि अकर्त्तव्यानि वेत्य-
पेक्षायाःमुच्यते । स्वाभीष्टभावमयानि, स्वाभीष्टभावसम्बन्धिनी,
स्वाभीष्टभावानुकूलानि, स्वाभीष्टभावविरुद्धानि स्वाभीष्टभाव-
विरुद्धानि इति पञ्चविधानि भजनानि शास्त्रे दृश्यन्ते । तत्र
कानिचित् साध्यसाधनरूपाणि, कानिचित् साध्यं प्रेक्षायां प्रति
उपादानकारणानि, कानिचित् निमित्तकारणानि, कानिचित् भजन-
चिह्नानि, कानिचिदुपकारकाणि कानिचिदुपकारकाणि, कानिचिन्
तटस्थानि इति । एतानि विभाज्य दृश्यन्ते ॥ १३ ॥

अनन्तर, रागानुगाभक्ति के भजनाङ्ग क्या हैं? वे सब किस प्रकार हैं? उन के लक्षण क्या हैं? वे सब किस प्रकार कर्त्तव्य अथवा अकर्त्तव्य हैं? इन बातों को यदि कोई जानने की इच्छा करता है तो उन का विषय वर्णन करते हैं। शास्त्र में (१) स्वाभीष्ट-
भावमय, (२) स्वाभीष्टभावसम्बन्धी, (३) स्वाभीष्टभावानुकूल,
(४) स्वाभीष्टभाव अविरुद्ध तथा (५) स्वाभीष्टभावविरुद्ध ये पाँच
प्रकार भजन देखने में आते हैं। उन में से कुछ तो साध्य के
अर्थात् प्रेम के साधनस्वरूप, कुछ साध्य प्रेम के उपादानकारण-

स्वरूप, कुछ निमित्त कारणरूप, कुछ भजनचिन्दस्वरूप, कुछ साध्य के उपकारक, कुछ अपकारकरूप तथा कुछ तटस्थ अर्थात् न उपकारक न अपकारक हैं ! अब इन को विभाग के द्वारा दिखाते हैं ॥ १३ ॥

तत्र दास्यसख्यादीनि स्वाभीष्टभावमयाणि साध्यसाधन-रूपाणि । गुरुपादाश्रयतो मन्त्रजपध्यानादीनि साध्यं प्रित्युपादान-कारणत्वाद्भावसम्बन्धिनि “जपेन्नत्यमनन्यधीः” इत्याद्युक्तेर्नित्य-कृत्यानि, “जप्यः स्वाभीष्टसंसर्गि कृष्णनाममहामनुः” इति गणो-द्देशदीपिकोक्तेः सिद्धरूपेणानुगम्यमानाभामपि मन्त्रजपदर्शनात् उपादानकारणत्वेन भावसम्बन्धीनि “गाः सर्वेन्द्रियाणि विन्दन् एव सन् मम गोपस्त्रीजनबल्लभो भवत्यभीष्टसंसर्गि कृष्ण नाम एव महामनुः सर्वमन्त्रश्रेष्ठ इत्यष्टादशाक्षरो दशाक्षरश्च मन्त्र एव अर्थादुक्तो भवतीति गणोद्देशदीपिकावाक्यार्थो ज्ञेयः । स्वीय-भावोचितनाम-रूप-गुण-लीलादिस्मरणश्रवणादीनि उपादानकार-णत्वात् भावसम्बन्धीनि । तथाहि—“नामानि रूपाणि तदर्थकानि गायन् बिलञ्जो बिचरेदसङ्ग” इति । “शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्य-भीक्षणः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।” इत्याद्युक्तेरभीक्षण-कृत्यानि । अत्र रागानुगायां यन्मुख्यस्य तस्यापि स्मरणस्य कीर्त्त-नाधीनत्वमवश्यं बलव्यमेव कीर्त्तनस्यैव एतद्व्युगाधिकारत्वात् सर्वभक्तिमार्गेषु सर्वशास्त्रैस्तस्यैव सर्वोत्कर्षप्रतिपादनाच्च । तपांसि श्रद्धया कृत्वा प्रेमाह्वया जज्ञिरे ब्रजे” इत्युज्ज्वलनीलमण्यु-क्तेरनुगम्यमानानां श्रुतीनां प्रेमाणं प्रति तपसा कारणत्वाव-गमात् कलावस्मिन् तपोऽन्तरस्य विगीतत्वात् “मदर्थं यद्व्रतं तपः” इति भगवदुक्तेरेकादशीजन्माष्टम्यादिब्रतानि तपोरूपाणि इति निमित्तकारणानि नैमित्तिककृत्यानि अकरणे प्रत्यवायश्रवणात्रि-त्यानि । तत्रैवैकादशीव्रतस्यान्वये “गोविन्दस्मरणं नृणां यदेका-

दश्युपोषणम्” इतिस्मृतेरुपादानकारणभ्रमणस्य लाभादंशेन भावसम्बन्धित्वमपि, व्यतिरेके तु “मातृहा पितृहा चैव भ्रतृहा गुरुहा तथा” इत्यादि स्कान्दादिबचनेभ्यो गुरुहन्तृत्वादिश्रवणा-न्नमापराधलाभः “ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य स्तेयिनो गुरुतल्पिनः” इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तेरनपायिपापविशेषलाभश्च, इति निन्दाश्रवणा-दत्यवश्यकृत्यत्वम् । किं बहुना “परमापदमापन्ने हर्षे वा समु-प स्थिते । नैकादशो त्यजेद् यस्तु तस्य दीक्षास्ति वैष्णवी । विष्णवा-र्पिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते ॥” इति स्कान्दवाक्याभ्या-मेकादशीव्रतस्य वैष्णवत्वमेव निर्दिष्टम् । विष्णवैष्णवानां भगवदनिवेदितभोजननिषेधात् “वैष्णवो यदि भुञ्जीत एकादश्यां प्रमादतः ।” इत्यत्र भगवन्निवेदितान्नस्यैव भोजननिषेधोऽवगम्यते । कार्तिकव्रतस्य च तपोऽंशेन निमित्तत्वं श्रवणकीर्त्तनाद्यंशेन उपा-दानत्वमपि । श्रीरूपगोस्वामिचरणानामसकृदुक्तौ कार्तिकदंवतेति कार्तिकदेवीत्युज्ज्वदेवीति ऊर्ज्ज् श्ररीति श्रवणाद्विशेषतः श्रीवृन्दावने-श्वरीप्रापकत्वमवगम्यते । “अम्बरीषशुकोक्तं नित्यं भागवतं शृणु” इति स्मृतेः क्रमेण श्रीभागवतश्रवणादेर्नित्यकृत्यत्वमुक्तम् । “कथा इमास्ते कथिता महीयसाम्” इत्यनन्तरं “यस्तूत्तमश्लोक-गुणानुवादः प्रस्तूयते नित्यममङ्गलघ्नः । तमेव नित्यं शृणुयाद्-भीक्ष्णं कृष्णोऽमलां भक्तिप्रभीप्समानः ॥” इति द्वादशोक्तेर्दशम-स्कन्धसम्बन्धिस्रष्टेष्टश्रीकृष्णचरितश्रवणादेर्यथायाग्यं नित्यकृत्यत्वं श्रवणकृत्यत्वं भावसम्बन्धित्वञ्च । निम्नोत्तमस्तुलसीगन्धचन्दन-मालावसनादिधारणानि भावसम्बन्धीनि । तुलसीकाष्ठमालागोपी-चन्दनादितिलकनाममुद्राचरणचिह्नादिधारणानि वैष्णवचिह्नान्य-नुकूलानि । तुलसीसेवनपरिक्रमणप्रणामादीन्यप्यनुकूलानि । गवाश्वत्थधात्रीब्राह्मणादिसम्मानानि तद्भावाविरुद्धानि उपकार-काणि । वैष्णवसेवा तूत्तमस्तलक्षणवती ज्ञेया । उक्तान्येतानि

गर्वाणि कर्त्तव्यानि । यथैव पोष्यात् कृष्णादपि सकाशत्
 तत्पोषकेष्वारचितदुग्धदधिनवनीतादिषु ब्रजेश्वर्या अधिकैवा-
 पेक्षा, श्रीकृष्णं स्वस्तन्यपथः पिबन्तं बुभुक्षुमप्यपहाय तदीयदुग्धो-
 च्चारणार्थं गतत्वात् । तथैव रागवर्तमानुगमनरसाभिज्ञभक्तानां पोष्ये-
 भ्यः श्रवणकीर्त्तनादिभ्योऽपि तत्पोषकेष्वेतेषु सर्वेषु परमैवापेक्षणं
 नैवानुचितम् । अहप्रहोपासनाःन्यास-मुद्रा-द्वारकाध्यान-महीष्य-
 चर्चनादीन्यपकारकाणि न कर्त्तव्यानि । पुराणान्तरकथाश्रवणादीनि
 तटस्थानि । अत्र भक्तेः सच्चिदानन्दरूपत्वान्निर्विकारत्वेऽपि
 यदुपादानत्वादिकं तत्खलु दुर्वितव्यत्वादेव भक्तिशान्त्रेषु “तत्र
 प्रेमबिलासाः स्युर्भावाः स्नेहादयस्तु षट्” इत्यादिषु बिलाषशब्देन
 व्यञ्जितं, यथा रसशास्त्रे विभावादिशब्देन अत्र खलु सुख-
 बोधार्थमेव उपादानादिशब्द एव प्रयुक्त इति क्षन्तव्यं सद्भिः ॥१४१
 उन में से दास्य-सख्यादिक स्वाभीष्टभावमय हैं । वे साध्य साधन
 रूप हैं । गुरु पादाश्रय से लेकर मन्त्र-जप ध्यानादि साध्य हैं, वे
 धर्म समूह साध्य प्रेम के उपादान कारण के हेतु भावसम्बन्धी
 करके कहे जाते हैं । “प्रत्यह अनन्यवित्त में जप करें” इत्यादि
 वचन के अनुसार वे सब नित्यकृत्य स्वरूप हैं । “स्वाभीष्ट संसर्गा,
 कृष्णनामरूप महामन्त्र जप्य है” इस गणोद्देशदीपिका वचन के
 अनुसार जानना चाहिये । सिद्ध रूप में जिनका अनुसरण किया
 जाता है उनका भी मन्त्रजप देखने में आता है । उपादानकारण
 के हेतु भावसम्बन्धी हैं । “हे कृष्ण ! गोपीजन हमारे वल्लभ हो
 कर सकल इन्द्रियों में निवास करो” इस प्रकार अर्थस्वरूप,
 अभीष्ट संसर्गा कृष्णनाम मन्त्र ही महामन्त्र अर्थात् सर्वमन्त्र-
 श्रेष्ठ है इस प्रकार अर्थ के वश तद्दश अष्टादशाक्षर तथा दशाक्षर
 मन्त्र ही गणोद्देशदीपिका के तात्पर्य हैं । निजभावोचित नाम-
 रूप-गुण तथा लीलाओं का स्मरण तथा श्रवणादि उपादानकारण

के हेतु भाव सम्बन्धी हैं । क्यों कि 'लज्जादिक परित्याग कर संगराहित हो तदर्थक नाम-रूपादि का गान करता हुआ भ्रमण करें" श्रीर "भक्तगण निरन्तर आप के चरित्रों का श्रवण-गान-कीर्त्तन तथा स्मरण करते हुए आनन्दानुभव को प्राप्त करते हैं" इत्यादिक वचन के अनुसार भावसम्बन्धी वे सब निरन्तर कर्त्तव्य रूपसे माने जाते हैं । यहाँ रागानुगामार्ग में स्मरणका मुख्यत्व है । स्मरण भी कीर्त्तनांग के अवश्य अधीन है । क्यों कि कीर्त्तनांग वर्त्तमान कलियुग में अधिकृत धर्म है । समस्त भक्तिमार्ग में कीर्त्तन का अधिकार है । समस्त शास्त्रों के द्वारा कीर्त्तन की सर्वोत्कर्षता प्रतिपादित की गयी है । "श्रुतियों ने तपस्याचरण के द्वारा प्रेमपूर्ण होकर ब्रज में जन्म ग्रहण किया" इस उज्वल-नीलमणि वचन से अनुगम्यमाना श्रुतियों का प्रेमाविर्भाव के लिये तपस्या ही कारण रूप से ज्ञात होती है, परन्तु वर्त्तमान कलियुग में अन्य तपस्या की निन्दा सुनने में आती है । मदर्थक व्रत ही तपस्या है इस प्रकार भगवान् का वचन भी है । अतः एकादशी-जन्माष्टमी आदि व्रत तपस्या रूप निमित्त कारण हैं । वे सब नैमित्तिक कृत्य करके साधारणरूप से परिगणित होने पर भी उनके अकरण में प्रत्यवाय सुनने में आता है, अतः वे सब नित्यकृत्य रूप हैं । एकादशी व्रत के विधिपक्ष में—“एकादशी में उपवास करने पर गोविन्द स्मरण की सिद्धि होती है” इस प्रकार स्मृतिवचन से उपादान कारण रूप स्मरणांग का लाभ होता है । उस अंश में भावसम्बन्धित्व प्राप्त हो जाता है । निषेधपक्ष में—“मातृहन्ता, पितृहन्ता, गुरुहन्ता होता है” इत्यादि स्कान्दादि पुराण वचनों से एकादशी व्रत का अकरण में गुरुहन्तृत्व आदि नामापराध उपस्थित होता है । “ब्रह्महत्याकारी—सुरापायी—तस्कर—गुरुतल्पगामियों का धर्मशास्त्रानुसार निस्तार देखने

में आता है परन्तु एकादशी में अन्नभोजन कारी की निष्कृति नहीं है” इत्यादि विष्णुधर्मोत्तर वचन के अनुसार अविनश्वर पापविशेष का लाभ होता है। अतः एकादशी का अत्यावश्यकत्व सिद्ध हो रहा है। इस प्रकार अत्यावश्यक कृत्य ही नित्यकृत्य माने जाते हैं। अधिक क्या कहें—“परम आपद् अथवा परम आनन्द उपस्थिति होने पर भी जो एकादशी का परित्याग नहीं करता है उस की ही वैष्णवी दीक्षा ठहरती है तथा जिस का समस्त कर्म विष्णु में अर्पित हो गया है वह वैष्णव करके माना जाता है” इन स्कन्दपुराण के दोनों वचनों के अनुसार एकादशी व्रत ही वैष्णव का लक्षण रूप से निर्देश किया जाता है। और भी वैष्णवों के लिये भगवत् अनिवेदित भोजन निषेध है। “वैष्णव यदि एकादशी में प्रमाद के बश भोजन करेगा” यहाँ पर भगवन्निवेदित अन्न का ही भोजन में निषेध जानना चाहिये। कार्तिकव्रत तपस्यांश में निमित्तकारण तथा श्रवणकीर्त्तनादि अंश में उपादानकारण स्वरूप है। श्रीरूपगोस्वामिचरण ने अनेक स्थलों में कार्तिकदेवता—कार्तिकदेवी—ऊर्जादेवी—ऊर्जेश्वरी इत्यादि निर्देश किया है। विशेष करके कार्तिकव्रत वृन्दावनेश्वरी प्रायकाल रूप से माना गया है। “अम्बरीष—शुक प्रोक्त भागवत का नित्य श्रवण करो” इत्यादि पुराणवचनों के अनुसार क्रम से भागवत श्रवण नित्यकृत्य करके माना गया है। “मैंने तुम्हारे निकट महापुरुषों की समस्त कथा का कीर्त्तन किया है” इस के उपरान्त “नित्य जो अमंगलहारी उत्तमश्लोक भगवान का गुणानुवाद कीर्त्तित होता है उसे श्रीकृष्ण में विशुद्धाभक्ति के इच्छुक निरन्तर श्रवण करें” इस प्रकार द्वादशस्कन्ध वचन के अनुसार दशमस्कन्ध सम्बन्धी निज प्रियतम श्रीकृष्ण चरित्र का श्रवण नित्यकृत्य—निरन्तरकृत्यत्व तथा भावसम्बन्धित्व रूप से सिद्ध हुआ है। तुलसीमाला

गोपीचन्दन—नाममुद्रा—चरणचिन्हादि वैष्णवचिन्ह अनुकूलरूप हैं । तुलसीसेवा—परिक्रमा—प्रणामादि भी अनुकूलरूप हैं । गौ-अश्वत्थ—धात्री—ब्राह्मणादि का सन्मान उस भाव के अविरुद्ध उपकारक हैं । वैष्णवसेवा उक्त समस्त लक्षण विशिष्ट है । ये सब कर्त्तव्य रूप हैं । जिस प्रकार ब्रजेश्वरी की पोष्य कृष्ण से पोषक रूप आवर्त्तितदुग्ध—दधी—नवनीतादि में अधिक अपेक्षा देखी गयी है । आप निजस्तन्यपायी- लुघातुर श्रीकृष्ण का परित्याग कर उन के दुग्ध उठाने के लिये गयी थीं । ठीक उसी प्रकार राग-मार्ग में अनुगमनकारी रसज्ञ भक्तों की पोष्यरूप श्रवण-कीर्त्तनादि से उस के पोषक इन सब में परम अपेक्षा रहनी चाहिये । अहंप्रह उपासना—न्यासमुद्रा—द्वारकाध्यान—महिषी पूजनादि अपकारक रूप हैं—इन का कर्त्तव्य उचित नहीं है । पुगाणान्तर की कथा का श्रवणादि तटस्थ रूप से करना चाहिये । भक्ति सच्चिदानन्द स्वरूप निर्विकार वस्तु है । उपादानत्वादि रूप से उस का दुर्वोध कथन उसके सुखबोध के लिये जानना चाहिये । भक्तिशास्त्रों में—“स्नेहादि षड्भाव प्रेम के विलास रूप से कहे गये हैं । रसशास्त्रों में जिस प्रकार रस को विभावादि शब्द के द्वारा निर्देशित किया जाता है ठीक उसी प्रकार हम भी यहाँ उस प्रकार की भक्ति को उपादानादि शब्द के द्वारा व्यक्त करते हैं । अतः साधुगण क्षमा करें ॥ १४ ॥

द्वितीयः प्रकाशः

मनु—“न हानिं न ग्लानिं न निजगृहकृत्यं व्यसनितानां ।
न घोरं नोद्घूर्णां न किल कदनं वेत्ति किमपि ।

बराङ्गीभिः स्वाङ्गीकृतसुहृद्वनङ्गाभिरभितो ।

हारवृन्दारण्ये परमनिशमुच्चबिहरति" ॥ इत्यादिभ्य एव श्रीवृन्दाबनेश्वर्यादिप्रेमबिलासमुग्धस्य श्रीब्रजेन्द्रसूनो न क्वापि अन्यत्रावधानप्रसंगसम्भव इत्यवसीयते । तथा सति नाना-दिग्देशवर्तिभिरनन्तरागानुगायभक्तैः क्रियमाणं परिचर्यादिकं केन स्वीकर्त्तव्यम् ? विज्ञप्ति स्तवपाठादिकञ्च केन श्रोतव्यम् ? तदंशेन परमात्मनैवांशांशिनोरैक्यादितिचेत् समाधिरयं सम्य-गाधिरेव तादृशकृष्णानुरागीभक्तानाम् । तर्हि का गतिः ? सान्नात् श्रीभदुद्धवोक्तिरेव । साच यथा "मन्त्रेषु मां वा उपहूय यत्त्वमकुण्ठिता-स्त्रण्डसदात्मबोधः । पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्मे मनोमोहय तीव देव ॥" अस्यार्थः—मन्त्रेषु जरासन्धबधराजसूयाद्यर्थगमन-विचारादिषु प्रस्तुतेषु मां वै निश्चितम् उपहूय यत् पृच्छेः उद्धव त्वमत्र किं कर्त्तव्यं तद्ब्रूहि इति पृच्छेः अपृच्छेः अकुण्ठितः कालादिना अस्त्रण्डः परिपूर्णः सदा सार्व्वदिक एव आत्मनो बोधः सम्बिच्छक्तिर्यस्य स मुग्ध इव यथा अन्यो मुग्धो जनः पृच्छति तथेत्यर्थः तत्तव युगपदेव मौग्ध्यं सार्व्वज्ञञ्च मोहयतीव मोहयतीव । अत्र मुग्ध इव त्वं न तु मुग्धः इति । मोहयतीव न तु मोहयति इति व्याख्यायां सङ्गत्यभावात् । असङ्गतेषु कर्म्मार्णयनीहस्य भवोऽभवस्येत्यादिबाक्येषु मध्ये एतद्वाक्यस्योपन्यासो व्यर्थः स्यादित्यतरस्तथा न व्याख्येयम् । ततश्च द्वारकालीलायां सत्यपि सार्व्वज्ञ्ये यथा मौग्ध्यं तथैव वृन्दाबनलीलायामपि सत्यपि मौग्ध्ये सार्व्वज्ञ्यं तस्याचिन्त्यशक्तिसिद्धमेव मन्तव्यम् । अतएव बर्णितं श्रीलीलाशुकचरणैः "सार्व्वज्ञत्वे च मौग्ध्ये च सार्व्वभौममिदं मह इति ॥१॥

अच्छा ? "श्रीकृष्ण, कन्दर्प को अपने सुहृत् रूप से अंगीकार करते हुए गोपसुन्दरियों के साथ बिहार कर रहे हैं । अर्थात् वे

निरन्तर गोपियों के साथ कामक्रीड़ा में रत हैं। जिसके कारण वे किसी हानि-ग्लानि—निजगृहकृतव्यसन, भय-भ्रम—यातनादि कुछ नहीं जान रहे हैं। क्यों कि आप निरन्तर श्री राधिका के साथ विलासमें मुग्ध हैं।” इत्यादि वचनोंसे श्रीराधिकाप्रेममें मुग्ध श्रीहरि के अन्य विषय में अवधान सम्भव पर नहीं है ऐश्रा स्थिर हो रहा है। यदि ऐसा ही है तो नानादेशीय असंख्य रागानुगीय भक्तों के द्वारा किये हुए परिचर्यादिक का स्वीकार किस प्रकार कर सकते हैं। उन का स्वीकार कौन कर सकता है? भक्तों के विद्वान्निस्तव पाठादि को कौन सुनता है? यदि कहो कि अंशरूप में विराजमान परमात्मा के द्वारा ही उसके श्रवणादि का समाधान हो सकता है। अंश-अंशि अभेद है। अंश के द्वारा अंशि का कार्य सिद्ध होता है।” यह सिद्धान्त उचित नहीं है। क्यों कि ऐसा होना समाधि क्रिया रूप से माना जा सकता है। कृष्णानु-रागी—भक्त के निकट समाधी तो महान् व्याधि रूप से प्रतीय-मान होती है। तब उसकी गति क्या है? कहते हैं—श्री उद्धव जी के बचन ही इस का समाधान हैं। उद्धवजी ने कहा—“प्रमो! आप सर्व्वदा अकुण्ठित अखण्ड आत्मबोध स्वरूप सम्बन्ध शक्ति के द्वारा परिपूर्ण हैं। आप का ज्ञान किसी भी प्रकार किसी काल में कुण्ठित नहीं होता है। आप सर्व्वदा अप्रमत्त अर्थात् किसी कार्य में आसक्त नहीं हैं। अतः मुग्ध न होकर भी जरासन्ध-वधादि के समय मुग्ध की भाँति मन्त्रणा करते हुए हमसे परामर्श पूछते हैं। आप के युगपद् अर्थात् एक ही समय मौजूद मौग्ध्य-तथा सार्व्वज्ञ्य हमें मोहित कर रहे हैं। यहाँ आप मुग्ध न होकर मुग्ध की भाँति इस प्रकार व्याख्या संगत है। मोहित करते नहीं हैं परन्तु मोहित की भाँति करते हैं यह व्याख्या संगत नहीं है। “कर्मरहित का कर्म, जन्मरहित का जन्म” इत्यादि वाक्य में

उक्त वाक्यों का उपन्यास व्यर्थ होता है । अतः शेषोक्तव्याख्या कर्त्तव्य नहीं है । इस लिये—द्वारकालीला में जिस प्रकार सर्वज्ञता रहने पर भी मुग्धता है ठीक उसी प्रकार वृन्दावनलीला में मौग्ध्यता रहने पर भी सार्वज्ञता है । भगवान् में युगपद् मौग्ध्यता—सार्वज्ञता ये उन की अचिन्त्यशक्ति के द्वारा सिद्ध होती है । श्रीलीलाशुक ने कहा है—“यह सार्वभौम व्योति रूप भगवान् श्रीकृष्ण में युगपद् सार्वज्ञता तथा मुग्धता मौजूद हैं ॥ १ ॥”

अत्र सर्वज्ञात्वं महैश्वर्यमेव न तु माधुर्यं, माधुर्यं खलु तदेव यद् श्वर्यं बिनाभूतकेवलनरलीलत्वेन मौग्ध्यमिति स्थूलधियो ब्रूवते ॥ २ ॥

“यहाँ सर्वज्ञता महान् ऐश्वर्य ही हैं, माधुर्य नहीं है, माधुर्य तो उस को कहते हैं कि ऐश्वर्य के बिना केवल मनुष्यलीला में मुग्धता है” इस प्रकार की व्याख्या मोटीबुद्धिवालों की ही जानना चाहिये ॥ २ ॥

माधुर्यादिकं निरूप्यते । महैश्वर्यस्य द्योतने वाद्योतने च नरलीलत्वानतिक्रमो माधुर्यम् । यथा पृतनाप्राणहारित्वेऽपि स्तनचूषणलक्षणनरबाललीलत्वमेव । महाकठोरशकटस्फोठनेऽप्यतिसुकुमारचरणत्रैमासिकयोत्तानशायिबाललीलत्वम् महादीर्घदामाशक्यबन्धत्वेऽपि मातृभीतिवैकल्यम् । ब्रह्मबलदेवादिमोहनेऽपि सर्वज्ञत्वेऽपि बत्सचारणलीलत्वम् । तथा ऐश्वर्यसत्त्व एव तस्याद्योतने दधिपयश्चौर्यं गोपस्त्रीलाम्पट्यादिकम् । ऐश्वर्यरहितकेवलनरलीलत्वेन मौग्ध्यमेव माधुर्यमित्युक्तेः क्रीडाचपलप्राकृतनरबालकेष्वपि मौग्ध्यं माधुर्यमिति तथा न निर्वाच्यम् । ३ अब माधुर्यादि का निरूपण करते हैं—जहाँ ऐश्वर्य का प्रकाशन अथवा अप्रकाशन होने पर भी मनुष्यलीला का व्यतिक्रम नहीं

है वहाँ माधुर्य है । ऐश्वर्य मौजूद रहे अथवा नहीं रहे परन्तु जिसमें नरलीला का व्यतिक्रम नहीं घटता है वह माधुर्य है । जैसा कि—पूतना के प्राणहरण के समय स्तनपानरूप नरबालक भाव । इधर पूतना के प्राणहरण में चेष्टाशील हैं परन्तु उसी समय स्तनपान के लिये रोदन कर रहे हैं । महान् कठोर शकट के भङ्गन में तत्पर हैं परन्तु अतिकोमल चरणों से मनोहर, त्रैमासिक शिशु की भाँति उत्तानशायी हैं । महान् दीर्घ रब्जुओं के द्वारा बन्धजाने में असमर्थ हैं परन्तु ठीक उसी समय माता के भय से भयभीत-व्याकुल है । ब्रह्मा—बलदेवादि को मोहित करने में चतुर हैं परन्तु वत्सचारण में तत्पर हैं । ऐश्वर्य मौजूद है परन्तु उस का अप्रकाश है । उसी अवस्था में दधि-दुग्ध की चोरी तथा गोपखीजनों में लाम्पट्यता आदिक दिखने में आते हैं । ऐश्वर्य से रहित केवल मनुष्यलीला प्राप्त मुग्धता को माधुर्य नहीं कहा जाता है । क्यों कि क्रीड़ा में चपल प्राकृत मनुष्यबालक की जो स्वाभाविक मुग्धता है उस को माधुर्य नहीं कहा जाता । ऐश्वर्य मौजूद है उस का प्रकाश अथवा अप्रकाश है । प्रभु मनुष्यलीला में आकर प्राकृत मनुष्य की भाँति रोदन कर रहे हैं । वह उन का माधुर्यभाव है । ऐश्वर्य का स्वीकार नहीं करने पर माधुर्य नहीं बन सकता है तथा प्राकृत मनुष्यबालक में भी वह आ सकता है । परन्तु ऐसा तो नहीं है । प्राकृत नरबालक में माधुर्यभाव कहाँ आसकता है ? भाव तो भगवान् की वस्तु है । वह अन्य किसी में नहीं है ॥ ३ ॥

ऐश्वर्यन्तु नरलीलत्वस्यान्पेक्षितत्वे सति ईश्वरत्वाविष्कारः । यथा मातापितरौ प्रति ऐश्वर्यं दर्शयित्वा—“एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे । नान्यथा मद्भावं ज्ञानं मत्त्यलिङ्गेन जायते ।” इत्युक्तम् । यथा अर्जुनं प्रति “पश्य मे रूपमैश्वर्यम्”

इत्युक्त्वा ऐश्वर्यं दर्शितम् । ब्रजेऽपि ब्रह्माणं प्रति मञ्जुमहिम-
दर्शने परः सहस्रचतुर्भुजत्वादिकमपीति ॥ ४ ॥

नरलीला की अपेक्षा न करते हुए जो ईश्वरत्व का आविर्भाव है, वह ऐश्वर्य है । जैसा कि आपने माता-पिता के निकट चतुर्भुज के प्रकाश द्वारा उन्हें अपने ऐश्वर्य को दिखाकर “मनुष्य शरीर के द्वारा मद्रिषयक ज्ञान नहीं होता है, पूर्व जन्मादि स्मरण करने के लिये पहले मैं अपने इस चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन कराता हूँ” ऐसा उपदेश दिया है तथा अञ्जुन को “मेरे ईश्वर सम्बन्धी रूप का दर्शन करो” ऐसा कह कर अपने ऐश्वर्य का दर्शन कराया । ब्रज में मञ्जुमहिमा प्रदर्शन के समय भी ब्रह्मा के हजारों चतुर्भुज स्वरूप का अवलोकन कराया ॥ ४ ॥

अथ भक्तिनिष्ठमैश्वर्यज्ञानम् । ईश्वरोऽयमित्यनुसन्धाने सति हृत्कम्पजनकसम्भ्रमेण स्वीयभावस्यातशैथिल्यं यत् प्रतिपादयति तदैश्वर्यज्ञानम् । अतएव “युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ इत्यादि वसुदेवोक्तेः “सखेतिमत्वा प्रसभ यदुक्तम्” इत्यञ्जुनोक्तेश्च ईश्वरोऽयमित्यनुसन्धानेऽपि हृत्कम्पजनकसम्भ्रमगन्धस्यानुद्गमात् स्वीयभावस्यातिस्थैर्यमेव यदुत्पादयति तन्माधुर्यज्ञानम् । यथा—“बन्दिनस्तमुषदेवगणा ये गीतबाद्याबलिभिः परिवर्जः” इति “बन्धमानचरणः पथि बृद्धैः” इति च युगलगीतोक्तेः गोष्ठं प्रति गवानयनसमये ब्रह्मेन्द्रनारदादिभिः कृतस्य कृष्णस्तुतिगीतबाद्यपूजोपहारप्रदानपूर्वकचरणबन्दनस्य दृष्टत्वेऽपि श्रीदाम-सुबल्लादीनां सख्यभावस्याशैथिल्यम् । तस्य तस्य श्रुतत्वेऽपि ब्रजावलानां मधुरभावस्यशैथिल्यम् । तथैव ब्रजराजकृत-तदाश्वासनवाक्यैर्ब्रजेश्वर्या अपि नास्ति वात्सल्यशैथिल्यगन्धोऽपि प्रत्युत धन्यैवाहं यस्यायं मम पुत्रः परमेश्वर इति मनस्यामिनन्दने पुत्रभावस्य दाढ्यमेव । यथा प्राकृत्या अपि मातुः पुत्रस्य पृथ्वी-

श्वरत्वे सति तत्पुत्रभावः स्फीत एवावभाति । एवं धन्या एव वयं
 येषां सखा च परमेश्वर इति यासां प्रेयान् परमेश्वर इति सखानां
 प्रेयसीनाञ्च स्वस्वभावदाह्यमेव ज्ञेयम् । किञ्च संयोगे सति
 ऐश्वर्य्यज्ञानं न सम्यगवभासते, संयोगस्य शैत्यात् चन्द्रातपतुल्य-
 त्वात् विरहे त्वैश्वर्य्यज्ञानं सभ्यगवभासते विरहस्यौघ्यात् सूर्य्या-
 तपतुल्यत्वात् । तदपि हृत्कम्पसम्भ्रमादराद्यभावान्नैश्वर्य्यज्ञानम् ।
 यदुक्तम् 'मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां
 स्त्राजतः कामयानाम् । बलिमपि बलिमत्त्वा वेष्टयद्वाङ्क्षवद्य
 स्तदलमसितसख्यैदुस्त्यजस्तत्कथार्थ' इति । अत्र ब्रजौकसां गोव-
 र्द्धनधारणात् पूर्वं कृष्ण ईश्वर इति ज्ञानं नासीत् । गोवर्द्धनधारण
 वरुणेलोकगमनानन्तरं तु कृष्णोऽयं ईश्वर एवेति ज्ञानेऽप्युक्तप्रकारेण-
 शुद्धं माधुर्य्यज्ञानमेव पूर्णम् । वरुणवाक्येनोद्धववाक्येन च साक्षा-
 दाश्वर्य्यज्ञानेऽपि, "युवां न नः सुताविति वसुदेववाक्यवत् ब्रजेश्वरस्य
 "न मे पुत्रः कृष्ण" इति मनस्यापि मनागपि नोक्तिः श्रूयते इति
 तस्माद्ब्रजस्थानां सर्व्वथैव शुद्धमेव माधुर्य्यज्ञानं पूर्णं पुरस्थानां तु
 ऐश्वर्य्यज्ञानमिश्रं माधुर्य्यज्ञानं पूर्णम् ॥ ५ ॥

अब भक्तनिष्ठ ऐश्वर्य्यज्ञान को दिखलाते हैं । ये ईश्वर हैं, इस
 प्रकार बुद्धि रहने पर जिसके द्वारा हृदयकम्पजनक सम्भ्रम के
 साथ हृदयवर्ती भाव की शिथिलता होती है उसको ऐश्वर्य्यज्ञान
 कहते हैं । "तुम दोनों हमारे पुत्र नहीं हो परन्तु साक्षात् ईश्वर
 प्रधानपुरुष हो" इत्यादि प्रकार की वसुदेव उक्त देखन में आती
 है । "मैंने तुमको सखा जान हठात् जो कुछ कहा है"—यह
 अर्जुन का वचन भी है । ईश्वर ये हैं इस प्रकार बुद्धि होने पर
 भी यदि हृदय कम्पकारी सम्भ्रम का उदय नहीं होता है वह
 माधुर्य्यभाव है । इसमें भक्त हृदय-गत भाव शैथिल्य न होकर
 स्थिरता को प्राप्त होता है । "गन्धर्वादि उपदेवगण वाद्य-गीत-

पुष्पादि उपहार के द्वारा उनकी उपासना करते रहते हैं।” “मार्ग में ब्रह्मादि वृद्धगण उन के चरणों की वन्दना करते हैं” इन दोनों बचन के अनुसार अरण्य से गोष्ठ में प्रत्यागमन के समय ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा श्रीकृष्ण को स्तव, गीत-वाद्यादि के साथ उपहार प्रदान, चरणवन्दनादि देखकर श्रीदाम-सुवलादि गोपबालकों के सख्यभाव का अशैथिल्य तथा उन सब बातों का श्रवण करके ब्रजरमणियों के मधुरभाव का अशैथिल्य देखन में आता है। उस प्रकार ब्रजराज के द्वारा आश्वासवाक्य बोले जाने पर भी ब्रजेश्वरी यशोदा के वात्सल्यभाव का गन्धमात्र शैथिल्य नहीं देखा गया है। वस्तुतः ‘मैं धन्या हूँ, जिस से यह मेरा पुत्र परमेश्वर है’ इस प्रकार आत्मश्लाघा के उदय से पुत्रभाव की दृढ़ता हो जाती है। जैसा कि प्राकृत में—पुत्र के राजा होने पर माता का पुत्रभाव शैथिल्य न होकर दृढ़ होता है ठीक उसी प्रकार ऐश्वर्यादि देख कर अथवा सुनकर ब्रजेश्वरी का पुत्रभाव दृढ़ होजाता है। हम सब धन्य हैं जिनके सखा परमेश्वर है। “इस प्रकार सखाओं का ‘प्राणबल्लभ परमेश्वर है’ इस प्रकार प्रेयसियों का भाव अपने-अपने भावानुसार दृढ़ता को प्राप्त होता है। और भी, संयोग के समय ऐश्वर्यज्ञान सम्यक् प्रकार से स्फुरित नहीं होता है। क्योंकि संयोग चन्द्रकिरण की भाँति शीतल वस्तु है। विरह के समय वह ऐश्वर्य सम्यक् रूप से स्फुरित हो जाता है। और भी विरह के समय जो ऐश्वर्य का स्फुरण होता है उसे ऐश्वर्यज्ञान करके स्वीकार नहीं किया जाता है। क्योंकि उस अवस्था में हृदय-कम्पकारी सम्भ्रम अथवा आदरादि का अभाव रहता है। “हे भ्रमर ! श्रीकृष्ण के पूर्व-पूर्व जन्म की कथाओं का स्मरण करके हम अत्यन्त भीता हो रही हैं। उनको क्रूरता का क्या दर्शन करेंगी। उनसे रामावतार में व्याध की भाँति बालि को बध

किया था तथा स्त्री परवश होकर कामुकी सूर्पणखा के नाक-कान का छेदन भी किया । वामन अवतार में बलि के पूजोपहार लेकर कौआ की भाँति उसको बाँधा था । अतः उस कृष्णवर्ण पुरुष में सख्यता प्रयोजन नहीं है । तौ भी उनकी कथाओं की जो आलोचना करती हूँ उस का कारण यह है कि आलोचना के बिना नहीं रह सकती हूँ ।” इन वचनों में श्रीराधिका का कोई सम्भ्रम अथवा आदर गौरव नहीं देखने में आता । गोवर्द्धनधारण के पहले ब्रजवासियों का कृष्ण में ईश्वरज्ञान नहीं रहा । गोवर्द्धनधारण तथा वरुणलोक गमन के उपरान्त उन की श्रीकृष्ण में ईश्वरबुद्धि हुई । परन्तु उस बुद्धि को ऐश्वर्यज्ञान नहीं कहा जा सकता है । वरुण के वचन तथा उद्धवजी के वचन से श्रीकृष्ण को साक्षात् ईश्वर करके जानने पर भी वसुदेव की भाँति ब्रजराज का पुत्रभाव ऐश्वर्यज्ञान से दूर नहीं हुआ । ‘तुम हमारे पुत्र नहीं हो’ इस प्रकार वसुदेव का वचन देखने में आता है । परन्तु ब्रजराज ने ‘श्रीकृष्ण मेरा पुत्र नहीं है’ इस प्रकार कभी नहीं कहा । अतः ब्रजवासियों वा सर्वप्रकार से शुद्ध माधुर्यज्ञान तथा पुरवासियों का ऐश्वर्यज्ञान मिश्रित माधुर्यज्ञान पूर्णरूपतः सिद्ध हुआ ॥५॥

ननु पुरे वसुदेवनन्दनः कृष्णोऽयमहमीश्वर एव इति नर-लीलत्वेऽपि जानात्येव यथा तथैव नन्दनन्दनः कृष्णः स्वमीश्वरत्वेन ब्रजे जानाति न वा ? यदि जानाति तदा दामवन्धनादिलीलायां मातृभोतिहेतुकाश्रुपातादिकं न घटते । तदादिकमनुकरणमेवेति व्याख्या तु मन्दमतीनामेव न त्वभिज्ञभक्तानाम् । तथा व्याख्यानस्याभिज्ञसम्मतत्वे “गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम यावद् या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम् । बक्त्वं निलीय भयभावतया स्थितस्य सा मां विमोहयति भोरपि यद्विभेति “इत्युक्तवत्यां कुन्त्यां मोहो नैव वर्येत । तथाहि भोरपि यद्विभेति इत्युक्तैश्च कुन्त्या

अत्रैश्वर्यज्ञानं व्यक्तीमूतं भयभावनया स्थितस्य इत्यन्तर्भयस्य च तथा सत्यत्वमेवाभिमतम् । अनुकरणमात्रत्वे ज्ञाते तस्या मोहो न सम्भवेदिति ज्ञेयम् । यदि च स्वमीश्वरत्वेन न जानाति तदा तस्य नित्यज्ञानावरणां केत कृतमिति ? अत्रोच्यते—यथा संसारबन्धे निपात्य दुःखमेवानुभावयितुं मायावृत्तिरविद्या जीवानां ज्ञानमावृणोति, यथा च महामधुर—श्रीकृष्णलीलासुखमनुभावयितुं गुणातीतानां श्रीकृष्णपरिवाराणां ब्रजेश्वर्यादीनां ज्ञानं चिच्छक्तिवृत्तिर्योगमायैवावृणोति, तथैव श्रीकृष्णमानन्दस्वरूपमप्पानन्दतिशयमनुभावयितुं चिच्छक्तिसारवृत्तिः प्रेमैव तस्य ज्ञानमावृणोति । प्रेम्णस्तु तस्वरूपशक्तित्वात् तेन तस्य व्याप्तेर्न दोषः । यथा ह्यविद्या स्वकृत्या ममतया जीवं दुःखयितुमेव बन्धनाति, यथा दण्डनीयजनस्य गात्रबन्धनं रज्जुनिगडादिना माननीयजनस्यापि गात्रबन्धनमनर्घसुगन्धसूदमकञ्चुकोष्णीषादिना, इत्यविद्याधीनो जीवो दुःखी प्रेमाधीनः कृष्णोऽति सुखी । कृष्णस्य प्रेमावरणरूप । सुखविशेषभोग एव मन्तव्यः, यथा भृङ्गस्य कमलकोषावरणरूपः । अतएवोक्तं “नापौष नाथ हृदयाम्बुरुहात् स्वपुंसामिति प्रणयरसनया धृताङ्घ्रपद्म इति च । किञ्च यथैवाविद्याया स्वतारतम्येन ज्ञानावरणतारतम्यात् जीवस्य पंचविधक्लेशतारतम्यं विधीयते, तथैव प्रेम्नापि स्वतारतम्येन ज्ञानैश्वर्याद्यावरणतारतम्यात् स्वविषयाश्रययोरनन्तप्रकारं सुखतारतम्यं विधीयते इति । तत्र श्रीयशोदानिष्ठः केवलप्रेमा स्वविषयाश्रयौ भभता रसनया निबध्य परस्परबशीभूतौ विधाय ज्ञानैश्वर्यादिकमावृत्य यथाधिकं सुखयति न तथा देवक्यादिनिष्ठो ज्ञानैश्वर्यमिश्र इति । तस्मात् तासां ब्रजेश्वर्यादीनां सन्निधौ तद्बात्सल्यादिप्रेममुग्धः श्रीकृष्णः स्वमीश्वरत्वेन नैव जानाति । यत्तु नानादानबदावानलाद्युत्पातागमकाले तस्य सावर्वाङ्ग्यं दृष्टं तत्त्वतु तत्तत्प्रेमिपरिजनपालनप्रयोज-

निकया लीलाशक्त्यैव स्फोरितं ज्ञेयम् । किञ्च मौग्ध्यसमयेऽपि तस्य साधकभक्तपरिचर्यादिग्रहणे सार्वज्ञ्यमचिन्त्यशक्तिसिद्धम् इति प्राकप्रतिपादितम् । तदेवं विधिमार्गरागमार्गयोर्विवेक ऐश्वर्यमाधुर्ययोर्विवेक ऐश्वर्यज्ञानमाधुर्यज्ञानयोर्विवेकश्च दर्शितः । स्वकीयापरकीयात्वयोर्विवेकस्तु उज्ज्वलनीलमणिव्याख्यायां विस्तारित एव । तत्र विधिमार्गेण राधाकृष्णयोर्भजने महाबैकुण्ठस्थगोलोके खल्वविविक्तस्वकीयापरकीयाभावमैश्वर्यज्ञानं प्राप्नोति । मधुरभावलोभित्वे सति विधिमार्गेण भजने द्वारकायां श्रीराधासत्यभामापरिकरत्वेन स्वकीयाभावमैश्वर्यज्ञानमिश्रमाधुर्यज्ञानं प्राप्नोति । रागमार्गेण भजने ब्रजभूमौ श्रीराधापरिकरत्वेन परकीयाभावं शुद्धमाधुर्यज्ञानं प्राप्नोति । यद्यपि श्रीराधिका श्रीकृष्णस्य स्वरूपभूता लहादिनी शक्तिः तस्या अपि श्रीकृष्णः स्वोय एव, तदपि तयोर्लीलासहितयोरेवोपास्यत्वं न तु लीलारहितयोः लीलान्तु तयो ब्रजभूमौ काप्यार्षशास्त्रे दाम्पत्यं न प्रतिपादितमिति श्रीराधा हि प्रकटाप्रकटप्रकाशयोः परकीयैव इति सर्वार्थनिष्कर्षसंचेपः ॥ ६ ॥

अच्छा, जिस प्रकार बसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में नरलीला करते हुए भी "हम ईश्वर हैं" इस प्रकार अपने को जानते थे क्या उस प्रकार नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ब्रज में अपने को ईश्वर करके जानते थे, किम्बा नहीं ? यदि जानते थे ऐसा कहोगे तो दामबन्धनादि लीला में मातृ भय हेतुक अश्रुपातादि नहीं घट सकता है । वह सब अनुकरणमात्र है इस प्रकार की व्याख्या निर्वोध लोग ही किया करते हैं । अभिज्ञ भक्तों की इस प्रकार की व्याख्या अनुचित होती है । यदि इस प्रकार की व्याख्या अभिज्ञ सम्मत है ऐसा कहोगे तो "हे कृष्ण ! आपने जब दधि का बर्तन

तोड़ा था उस समय माता यशोदा आपको बाँधने के लिये रस्सी लेकर तत्परा हुई। उस समय माता के भय से आपकी जो अवस्था हुई थी वह अवस्था मेरे स्मरण पथ में आकर विमोहित कर रही है। उस समय माता को देख कर आपके दोनों नेत्र भय से व्याकुल तथा काजर से मिश्रित अश्रुधारा से व्याप्त हो गये। भय तो आपसे भीत होकर भागता है। आप इस प्रकार होते हुए भी यशोदा के भय से भीत होकर काँपते थे।” इस प्रकार कुन्तीदेवी के वचन में मोहरूप वर्णन नहीं होता। “जिन के भय से भयभीत होकर” इस वचन से कुन्ती का ऐश्वर्यज्ञान स्पष्ट है। फिर “उस भय भावना से भीत होकर” इस वचन से कृष्ण के आन्तरिक भय सत्य है ऐसा कुन्ती का अभिमत है। यदि “यह अनुकरण मात्र है” ऐसा कुन्ती का बोध होता तो उसकी मोहसम्भावना नहीं होती। यदि कही कि ब्रज में श्रीकृष्ण अपने को ईश्वर करके नहीं जानते थे तौ नित्यज्ञानानन्दघन उन के नित्यज्ञान का आवरण किसने किया? उस का उत्तर यह है—जिस प्रकार संपारबन्धन में डालकर दुःखानुभव कराने के लिये मायावृत्ति अविद्या जीवों के ज्ञान को आवरित करती है, उसी प्रकार महामधुर श्रीकृष्णलीला का सुख आस्वादन कराने के लिये उनके गुणातीत परिवार ब्रजे-श्वरी आदि के ज्ञान को चिच्छक्तिवृत्ति योगमाया आवृत कर देती है, तथा आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण को भी अतिशय आनन्द का अनुभव कराने के लिये ही उन के ज्ञान को भी उसी योगमाया चिच्छक्ति की सारवृत्ति प्रेम ही आवृत कर देती है। प्रेम उन की स्वरूपशक्ति की ही वृत्ति है, अतः उस के द्वारा उन को व्याप्ति कोई दोषावह बात नहीं है। जिस प्रकार अविद्या निजवृत्ति ममता के द्वारा जीव को दुःख देने के लिये बाँधती है, जिस प्रकार दण्डनीय व्यक्ति के शरीर का बन्धन रज्जु अथवा साँकल के द्वारा

किया जाता है, तथा जैसा कि माननीय व्यक्ति के शरीरबन्धन सुगन्ध-सूदम कंचुक अथवा पगड़ी के द्वारा देखा जाता है। उभय प्रकार के अविद्याधीन जीव दुःखी तथा प्रेमाधीन श्रीकृष्ण अति सुखी हैं। प्रेमाधीन श्रीकृष्ण के उस प्रकार का बन्धन देखने में आता है परन्तु वह बन्धन दुःख रूप न होकर परम सुख का प्रदान करता है। श्रीकृष्ण को प्रेम के द्वारा आवृत्त हो जाना सुख-विशेष भोग के लिये है, ऐसा जानना चाहिये। जैसा कि भ्रमर का कमलकोष में आवरण होता है ठीक उसी प्रकार है। अतः शास्त्र में कहा है—“हे नाथ आप भक्तों के हृदयकमल से बाहिर नहीं होते हैं” “जीव प्रणयरञ्जु के द्वारा आप के पाद पद्म को बाँध लेता है।” और भी जैसा कि अविद्या निजतारतम्य अर्थात् अल्प-अधिकाधिक भेद के द्वारा जीव के ज्ञानावरण को अल्प-अधिक तारतम्य से करती है जिससे पाँच प्रकार के क्लेश उत्पन्न होते हैं ठीक उसी प्रकार प्रेम भी अपने तारतम्य के अनुसार ज्ञान-ऐश्वर्यादि के आवरण को तारतम्य रूप से करता है। जिससे निज विषय कृष्ण एवं निज आश्रय गोपी आदिकों को अनन्त प्रकार से सुख भोग कराता रहता है। उन में से यशोदादि ब्रजपरिकरनिष्ठ विशुद्ध प्रेम जिस प्रकार अपने विषय तथा आश्रय को ममतारञ्जु के द्वारा बाँधकर परस्पर को परस्पर के अधीन कर दोनों के ज्ञान-ऐश्वर्य्य को आवरित करके अत्यधिक सुख प्रदान करता है, ज्ञान-ऐश्वर्य्य से मिश्रित देवकी आदि पुरवासीनिष्ठ का प्रेम उस प्रकार सुख प्रदान नहीं करता है। अतः उन ब्रजेश्वरी आदिक के निकट उनके वात्सल्यादि प्रेम से मुग्ध श्रीकृष्ण अपने को ईश्वर करके नहीं जानते हैं। दानव-दावानलादि उत्पात के समय श्रीकृष्ण की जो खव्वंज्ञता देखने में आती है वह निश्चय उन सब प्रेमीपरिजन के पालन प्रयोजन-रूपिणी लीलाशक्ति के

द्वारा उद्भावित हुई है, ऐसा जानना चाहिये । और भी, मुग्ध हो जाने के समय में भी श्रीकृष्ण के साधकभक्तों के परिचर्यादि ग्रहण में जो खर्वज्ञता देखने में आती है वह अचित्यशक्ति के द्वारा समाधित होती है, यह पहिले प्रतिपादित किया गया है । इस प्रकार विधिमार्ग-रागमार्ग का विवेक, ऐश्वर्य्य-माधुर्य्य का विवेक, ऐश्वर्य्यज्ञान-माधुर्य्यज्ञान का विवेक दिखलाया गया है । स्वकीया-परकीया का विवेक उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ की व्याख्या में विस्तारित किया गया है । अब हम यह कहते हैं कि—विधि-मार्ग के द्वारा राधाकृष्ण का भजन करने पर महावैकुण्ठस्थ गोलोक में स्वकीया-परकीया भेद भाव से वर्जित ऐश्वर्य्यज्ञान की प्राप्ति होती है । और यदि मधुरभाव में लोभ है अथच विधिमार्ग से भजन किया जाता है तो द्वारका में राधा-सत्यभामा के ऐश्वर्य्य के कारण सत्यभामापरिकर रूप से ऐश्वर्य्यज्ञानमिश्रित माधुर्य्यज्ञान का लाभ होता है । केवल रागमार्ग से भजन करने पर ब्रज में श्रीराधिकापरिवार रूप में शुद्धमाधुर्य्यज्ञान की प्राप्ति होती है । यद्यपि श्रीराधिका श्रीकृष्ण की स्वरूपभूता लहादिनी शक्तिरूपा हैं तथा श्रीकृष्ण राधिका के स्वकीय हैं तो भी दोनों को लीला के साथ उपासना होती है कभी लीला रहित रूप में उपासना नहीं है । लीलावस्था में ब्रजभूमि में किसी भी आर्षशास्त्र में दोनों का दाम्पत्य प्रतिपादन नहीं किया गया है । अतः श्रीराधिका के प्रकट-अप्रकट दोनों प्रकाश में परकीयत्व है यह निश्चित है ॥६॥

अथ रागानुगाभक्तिप्रज्जनस्यानर्थनिवृत्तिनिष्ठा रुच्याशक्त्य-
नन्तरं प्रेमभूमिकारुढस्य साक्षात्स्वाभीष्टप्राप्तिप्रकारः प्रदर्श्यते ।
यथोज्ज्वलनीलमणौ “तद्भावबद्धरागा ये जनास्ते साधने रताः ।
तद्योग्यमनुरागौघं प्राप्योत्कण्ठानुसारतः । ता एकशोऽथवा द्वित्राः
काले काले ब्रजेऽभवन्” इति । अनुरागौघं रागानुगाभजनौत्कण्ठ्यं

न त्वनुरागस्थायिनं साधकदेहेऽनुरागोत्पत्त्यसम्भवात् । ब्रजेऽभव-
 न्निति अबतारसभये नित्याप्रियाद्या यथा आविर्भवन्ति तथैव
 गोपिकागर्भे साधनसिद्धा अपि आविर्भवन्ति । ततश्च नित्यसिद्धा-
 दिगोपीनां महाभाववतीनां सङ्गमहिम्ना दर्शन-श्रवण-कीर्तना-
 दिभिः स्नेह-मान-प्रणय-रागानुरागमहाभावा अपि तत्र गोपिकादेहे
 उत्पाद्यन्ते । पूर्वजन्मनि साधकदेहे तेषामुत्पत्त्यसम्भवात् । अत-
 एव ब्रजे कृष्णप्रेयसीनामसाधारणानि । यदुक्तम्—“गोपीनां
 परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने । क्षणं युगशतमिव यासां येन
 बिना भवेदिति” “त्रुटिं युं गायते त्वामपश्यतामि” त्यादि च ।
 क्षणस्य युगशतायमानत्वं महाभावलक्षणम् । ननु प्रेमभूमिकाधि-
 रुढस्य साधकस्य देहभङ्गे सत्येवाप्रकटप्रकाशे गोपीगर्भाज्जन्मना
 बिना एव गोपिकादेहप्राप्तौ सत्यां तत्रैव नित्यसिद्धगोपिकासङ्गो-
 ऽद्भुतानां स्नेहादीनां भावानां प्राप्तिः स्यादित्येवं किं न ब्रूवे ?
 मैवम् । गोपीगर्भाज्जन्मना बिना इयं सखी कस्याः पुत्री कस्य बधूः
 कस्य स्त्री इत्यादिनरलीलताव्यवहारो न सिद्ध्येत् । तर्ह्यप्रकट
 प्रकाश एव जन्मास्तीति चेन्नैवं, प्रपञ्चागोचरस्य वृन्दावनीयप्रका-
 शस्य साधकानां प्रापञ्चिकलोकानाञ्च प्रवेशादर्शनेन सिद्धानामेव
 प्रवेशदर्शनेन ज्ञापितात् केवलसिद्धभूमित्वात् स्नेहादयो भावास्तत्र
 स्वस्वसाधनैरपि तूर्णं न फलन्ति, अतो योगमायया जातप्रेमाणो
 भक्तास्ते प्रपञ्चागोचरे वृन्दावनप्रकाशे एव श्रीकृष्णावतारसमये
 नीयन्ते । तत्रोत्पत्त्यनन्तरं श्रीकृष्णाङ्गसङ्गात् पूर्वमेव तत्तद्भाव-
 सिद्धयर्थं तत्र साधकभक्तानां कर्मिप्रभृतीनां सिद्धभक्तानाञ्च
 प्रवेशदर्शनेनैवानुभूयते साधकभूमत्वं सिद्धभूमत्वाञ्च । ननु
 तर्ह्येतावन्तं कालं तैः परमोत्कण्ठभक्तैः क्व स्थातव्यम् ? तत्रो-
 च्यते । साधकदेहभङ्गसमये एव तस्मै प्रेमवते भक्ताय चिरसमय-
 विधृतसाक्षात्सेवाभिलाषमहोत्कण्ठाय भगवता कृपयैव सपर-

करस्य स्वस्य दर्शनं तद्भिलषणीयसेवादिकं चालब्धस्नेहादिप्रेम-
भेदाद्यापि सकृद्दीयते एव यथा नारदायैव चिदानन्दमयी गोपिका-
तनुश्च दीयते । सैव तनुर्योगमायया वृन्दावनीयप्रकटप्रकाशे
कृष्णपरिवारप्रादुर्भावसमये गोपीगर्भाद्ब्रूयाव्यते । नात्र काल-
बिलम्बगन्धोऽपि । प्रकटलीलाया अपि विच्छेदाभावात् । यस्मि-
न्नेव ब्रह्माण्डे तदानीं वृन्दावनीयलीलानां प्राकट्यं तत्रैवास्यामेव
ब्रजभूमौ, अतः साधकप्रेमिभक्तदेहभङ्गसमकाशेऽपि सपरिकर-
श्रीकृष्णप्रादुर्भावः सदैवास्ति इति भां भो महानुरागिसोत्कण्ठ-
भक्ता मामैष्टु सुस्थिरास्तृप्त स्वस्येवास्त भवद्भ्य इति ॥ ७ ॥

अनन्तर, रागानुगाभक्ति वाले भक्त के अनर्थनिवृत्ति-निष्ठा-रुचि-
आसक्ति के पश्चात् प्रे-भूमिका में आरोहण हो जाने पर साक्षात्
रूप से जिस प्रकार उसे निज-अभीष्ट की प्राप्ति होती है उस का
वर्णन करते हैं । उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ में कहा गया है—“जो
ब्रजभाव में वद्वराग होकर रागमार्ग के अनुसार भजन परायण
हैं वे तद्द्वारा अनुराग समूह को प्राप्त होकर उत्कण्ठा के अनु-
सार अकेला किम्वा दो-तीन मिल कर यथा समय ब्रजभूमि में
गोपी होकर जन्म लेते हैं ।” यहाँ अनुराग समूह का अर्थ—
रागानुगाभजनविषयिणी उत्कण्ठा परम्परा है । अनुराग शब्द से
स्थायिभाव रूप अनुराग नहीं है । क्यों कि साधक शरीर में उस
का अत्यन्त अभाव है । “ब्रजभूमि में गोपी रूप से जन्म लाभ”
बोलने पर अवतार के समय नित्यसिद्धा गोपियों की भाँति गोपी
गर्भ में आविर्भाव है । पश्चात् महाभाववती नित्यसिद्धगोपियों
की सङ्गमहिमा से दर्शन-श्रवण-कीर्तनादि के द्वारा उस गोपिका-
देह में स्नेह-मान-प्रणय-राग-अनुराग-महाभाव उत्पन्न होते हैं ।
गोपीजन्म के पहले साधक शरीर में प्रेम के अतिरिक्त उनकी
उत्पत्ति असम्भव है । अतः ब्रज में श्रीकृष्णप्रेयसियों में सब

असधारण लक्षण मौजूद हैं, ऐसा जानना चाहिये । श्रीभागवत में कहा है—“गाबिन्द दशन से गोपियों का परमानन्द होता है और अदर्शन में एक-एक क्षण उन के लिये सौ-सौ युग की भांति बोध होता है ।” “आपको न देखकर एक ही मुहूर्त्त युग की भांति हो जाता है ।” क्षणकाल का युगशत की भांति प्रतीक हो जाना यह महाभाव का लक्षण है । अच्छा ! “प्रेमभूमिका में आरूढ़ साधक के शरीर नाश के उपरान्त गोपीगर्भ में जन्म के बिना ही अप्रकट प्रकाश में गोपीदेह की प्राप्ति होवे । उस गोपीदेह में नित्यसिद्ध गोपियों के प्रभाव से स्नेहादि भावों की प्राप्ति हो सकती है” ऐसा सिद्धान्त क्यों नहीं करते हा ? उस के उत्तर में कहते हैं—तुम इस प्रकार नहीं कह सकते । क्यों कि गोपीगर्भ में जन्म के बिना “वह किस की कन्या, किस की वधु, किस की पत्नी” इत्यादि नरजीजा का व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता है । अच्छा ! अप्रकटप्रकाश में भी गोपीगर्भ में जन्म हो सकता है यदि यों कहें तो यह भी सङ्गत नहीं है । क्योंकि प्रपञ्च के अगोचर वृन्दावन के प्रकार ही में अप्रकटजीजास्थल है । साधकों का किम्बा प्रापञ्चिकलोगों का उस में प्रवेश देखने में नहीं आता । केवल सिद्धगण वहाँ प्रवेश करते हैं तथा उस को सिद्ध-भूमि भी कहते हैं । वहाँ साधन करने पर भी स्नेहादि भाव समूह शीघ्र लाभ नहीं हाते । अतः जातप्रेम भक्त अर्थात् जिन को प्रेम उत्पन्न हो गया है ऐसे भक्तगण ही योगमाया के द्वारा प्रपञ्च-गोचर वृन्दावन प्रकाशकाल में श्रीकृष्णावतार के साथ लिये जाते हैं । इस प्रकार वहाँ उत्पत्ति के पश्चात् तथा श्रीकृष्ण के अङ्गुष्ठ के पहले वे सब भाव सिद्ध होते हैं । उस भावसिद्ध के लिये कर्मा आदिक साधकभक्तों का तथा सिद्धभक्तों का प्रवेश देखने में आता है । अतः प्रकटप्रकाश को साधनभूमि रूप तथा

अप्रकटप्रकाश को सिद्धभूमि रूप में अनुमान किया जाता है । अच्छा ! प्रकट प्रकाश तो कदाचित् ही होता है । तब तक अनुरागीभक्त कहाँ ठहरता है ? उत्तर में कहते हैं—प्रेमप्राप्त, बहुकाल से साक्षात् सेवा प्राप्ति करने के लिये महान् उत्कण्ठित उस भक्त के शरीर भङ्ग हो जाने पर भगवान् अपनी कृपा के द्वारा परिवारवर्ग के साथ अपने दर्शन, तथा उसकी अभिलाषणीय सेवादि को एक बार प्रदान करते हैं । किन्तु उस समय स्नेहादिभाव का उदय नहीं होता । देवर्षि नारद जी उस का दृष्टान्त हैं । उस समय भगवान् उस भक्त को गोपीदेह भी दान करते हैं । जिस ब्रह्माण्ड में उस समय वृन्दावनीय लीलाओं का प्राकट्य हो रहा है उसी ब्रजभूमि में किम्बा यहाँ की ब्रजभूमि में श्रीकृष्ण किम्बा उनके परिवारों के प्रादुर्भाव के समय गोपीगर्भ से वह प्रादुर्भावित होता है । योगमाया के द्वारा उस का समाधान होता है । अतः साधक-प्रेमीभक्त के देहभङ्ग समय में भी सपत्निकर श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव मौजूद है ऐसा जानना चाहिये । क्योंकि उन के जन्मादिक समस्त लीला नित्य हैं अर्थात् अभी भी वह किसी ब्रह्माण्ड में हो रही हैं । अतः महानुरागो उत्कण्ठित भक्तव्रण ! भय मत कीजिये । धैर्य रखिये । आप सब का मङ्गल ही होगा ॥ ७ ॥

“लीलाबिलासिने भक्तिमञ्जरीलोलुपालिने ।

मौग्ध्यसार्वज्ञ्यनिलये गोकुलानन्द ते नमः ॥

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।

इत्यवोचः प्रभो तस्मादेतदेवाहमर्थये ॥

गोपीकुचालंकृतस्य तव गोपेन्द्रनन्दन ! ।

दास्यं यथा भवेदेवं बुद्धियोगं प्रयच्छ मे ॥

ये तु रागानुगा भक्तिः सर्वथैव सर्वदैव शास्त्रविधिमतिक्रान्ता एव इति ब्रूवते “ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः”

इति "विधिहीनभसृष्ट्रम" इत्यादि गीतोक्ते गर्हामर्हतो मुहुर्हृत-
पातमनुभूतवन्तोऽनुभवन्तोऽनुभविष्यन्ति चेत्यलमातिबिस्तरैण ।

हन्त रागानुगावर्त्म दुर्दशं विबुधैरपि ।

परिचिन्वन्तु सुधियो भक्ताश्चन्द्रकयानया ॥ ८ ॥

इति महामहोपाध्यायश्रीमद्बिश्वनाथचक्रवर्तिमहाशयविरचिता
रागवर्त्मचन्द्रिका समाप्ता ॥

हे गोकुलानन्द ! हे लीलाविलासी ! मक्तिमञ्जरीमकरन्द
के लोलुप मधुकर ! मौग्ध्य-सान्त्वज्ञनिधि आपको नमस्कार है । हे
प्रभो ! आपने अपने मुख से कहा है—“मैं अपने भक्तों को तादृश
बुद्धियोग प्रदान करता हूँ जिस से वे मुझको प्राप्त करते हैं” अतः
हे गोपेन्द्रनन्दन ! मैं प्रार्थना करता हूँ कि—गोपीकुचों से अलं-
कृत तुम्हारा दास्य लाभ हो हमें उस प्रकार की बुद्धि दीजिये ।”
जो सब कहते हैं—“रागानुगाभक्ति सब समय सर्वप्रकार से शास्त्र-
विधि का अतिक्रम करती है” वे सब “जो शास्त्रविधि का उलंघन
करके श्रद्धा के साथ अर्चवना करता है” तथा “विधिहीन, अदत्त
अन्न इत्यादि ग्रहण करते हैं इन गीतावचनानुसार निन्दनीय हैं ।
वे तीनों कालों में विद्वानों के द्वारा उम्र त होते हैं । इस विषय में
अधिक बोलना निष्प्रयोजन है । अहो ! रागानुगाभार्ग अत्यन्त
दुर्दश है । देवताओं के भी महान् अगांचर है । भक्तसुधीगण
इस रागवर्त्मचन्द्रिका की सहायता से इस मार्ग का परिचय
करें ॥ ८ ॥



उज्वलनीलमणिकिरणः ।

अथोज्ज्वलरसस्तत्र नायकचूडामणः श्रीकृष्णः । प्रथमं गोकुलमथुगद्वारकासु क्रमेण पूर्णतमः पूर्णतरः पूर्ण इति त्रिविधः । धीरोदात्तः धीरललितः धीरोद्धतः धीरशान्त इति प्रत्येकं चतुर्विधः तत्र रघुनाथवत् गर्भीरो विनयी यथार्हसर्वजनसन्मानकारित्यादिगुणवान् धीरोदात्तः कन्दर्पवत् प्रेयसीवशो निश्चिन्तो नवतारुण्यो विदग्धो धीरललितः । भीमसेनवत् उद्धत आत्मश्लाघारोषकैतवादिगुणयुक्तो धीरोद्धतः । युधिष्ठिरवत् धार्मिको जितेन्द्रियः शास्त्रदर्शी धीरशान्तः । पुनश्च पत्युपपतित्वेन प्रत्येकं स द्विविधः । एवं पुनश्च अनुकूलो दक्षिणः शठो वृष्ट इति प्रत्येकं चतुर्विधः एकस्यामेव नायिकायामनुरागी अनुकूलः, सर्वत्र समादाक्षणः, साक्षात् प्रियं वक्ति परोक्षे अप्रियं करोति यः स शठः, अन्यकान्तासम्भोगचिह्नादियुक्तोऽपि निर्भयः मिथ्यावादी यः वृष्टः । एवं षड् नवतिविधा नायकभेदाः ॥ १ ॥

अथाश्रयालम्बननायिकाः प्रथमं स्वीयाः परकीया इति द्विविधाः कात्यायनीत्रलपराणां कन्यानां मध्ये या गान्धर्वेण विवाहिताः ताः स्वीयाः तदन्या धन्यादयः कन्याः परकीया एव । श्रीराधाद्यास्तु प्रौढाः परकीया एव । कियन्त्यः गोकुले स्वीया अपि पित्रादिशङ्कया परकीया एव । द्वारकायां रुक्मिण्याद्याः स्वीया एव ततश्च मुग्धा मध्या प्रगल्भा इति त्रिविधाः । मध्या मानसमये धीरामध्या अधीरामध्या धीराधीरामध्या इति त्रिविधाः । वक्रोक्तिपवित्रभर्त्सनकारिणी या सा धीरामध्या । मिश्रितवाक्या या सा धीराधीरामध्या श्रीराधा । तत्र प्रगल्भापि धीरप्रगल्भा

अधीरप्रगल्भा धीराधीरप्रगल्भा चेति त्रिविधा । तत्र निजरोष-
गोपनपरा सुरते उदासीना या सा धीरप्रगल्भा पालिका चन्द्रावली
भद्रा च । निष्ठुरतजनेन कर्णोत्पलेन पद्मेन या कृष्णं ताडयति सा
अधीरप्रगल्भा श्यामला । रोषसंगोपनं कृत्वा विञ्चत्तर्जनं करोति
या सा धीराधीरप्रगल्भा मङ्गला मुग्धातिरोषेण मौनमात्रपरा
एक विधैव । एवं त्रिविधा मध्या प्रगल्भा त्रिविधा मुग्धा एकविधा
इति सप्तधा । स्वीया-परकीया भेदेन चतुर्दशविधा । कन्या च
मुग्धैकविधा इति पञ्चदशविधा नायिका भवन्ति इति ।
अथाष्टनायिकाः—अभिसारिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठता,
विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, प्रोषतभर्तृका स्वाधीन-
भर्तृका । अभिसारयाति कृष्णं स्वयं बाभ्रुवति या साभिसारिका ।
कुञ्जमन्दिरे सुरतशय्यासने मालयताम्बूलादिकं मदनोत्सुका करोति
या सा वासकसज्जा । कृष्णविलम्बे सति तेन विरहेणात्कण्ठयते
या सा विरहोत्कण्ठता । यदि यात्येव कृष्णस्तदा विप्रलब्धा ।
प्रातरागतम् अन्यकान्तासम्भागचिह्नयुक्तं कृष्णं रोषेण पश्यति या
सा खण्डिता । मानान्ते पश्चात्ताप करोति या सा कलहान्तरिता ।
कृष्णस्य मथुरागमने सति या दुःखार्ता सा प्रोषतभर्तृका ।
सुरतान्ते वेशाद्यर्थं या कृष्णं ज्ञापयाति सा स्वाधीनभर्तृका एवं
पञ्चदशानामष्टगुणतत्वेन विशत्युत्तरशतानि । पुनश्चोत्तममध्यम-
कानिष्ठत्वेन षष्ट्युत्तराण त्रीणि शतानि नायिकाभेदानां तासां
ब्रजसुन्दरीणां मध्ये काश्चिन्नित्यसिद्धाः श्रीराधाचन्द्रावल्यादयः ।
काश्चित् साधनसिद्धाः । तत्र काश्चित् मुनिपूर्वाः काश्चित् श्रुति-
पूर्वाः काश्चित् द्रव्य इति ज्ञेयाः ॥ २ ॥

अथ स्वभावाः । काश्चित् प्रखराः श्यामलामङ्गलादयः ।
काश्चिन्मध्या श्रीराधिकापालिप्रभृतयः । काश्चिन्मृद्वीति ख्याता-
श्चन्द्रावल्यादयः । अथ सपत्नेः सुहृत्पत्नेः तटस्थपत्नी विपत्त इति

भेदचतुष्टयं स्यात् । तत्रापि काश्चिद्बामाः काश्चिद् दक्षिणाश्च । श्रीराधायाः स्वपक्षेः ललिताविशाखादिः सुहृत्पक्षः श्यामला यूथेश्वरी तटस्थपक्षः भद्रा प्रतिपक्षश्चन्द्रावली । तत्र काश्चिद्बामाः काश्चिद्दक्षिणाः स्युः । श्रीमती राधिका बामा-मध्या नीलवस्त्रा रक्तवस्त्रा च । ललिता प्रखरा शिखिपिञ्जवसना । विशाखा वामा मध्या तारावलिबसना । इन्दुरेखा वामा प्रखरा अरुणवस्त्रा । रङ्गदेवीसुदेव्यौ वामे प्रखरे रक्तवस्त्रे च । सर्वा एव गौरवर्णाः । चम्पकलता वामा मध्या नीलवस्त्रा चित्रा दक्षिणा मृद्धी नीलवसना । तुङ्गविद्या दक्षिणा प्रखरा शुक्लवस्त्रा च । श्यामला वाम्यदाक्षिण्ययुक्ता प्रखरा रक्तवस्त्रा । भद्रा दक्षिणा मृद्धी चित्रवसना चन्द्रावली दक्षिणा मृद्धी नीलवस्त्रा, अस्याः सखी पद्मा दक्षिणा प्रखरा शैव्या दक्षिणा मृद्धी । सर्वा एव रक्तवस्त्राः ॥ ३ ॥

अथ दूती द्विविधा स्वयं दूती आप्तदूती च तत्राप्यदूती च त्रिविधा अमितार्था निसृष्टार्था पत्रहारिणी च । वाक्यं विना इङ्गितेनैव या द्यौत्यं करोति सा अमितार्था, या आज्ञया समस्तं कार्यं करोति भारं वहति च सा निसृष्टार्था, या पत्रेण कार्यं करोति साधयति च सा पत्रहारिणी ताः शिल्पकारिणी दैवज्ञा लिङ्गिनी परिचारिका धात्रेयी वनदेवी सखी चेत्यादयः । ब्रजे वीरा वृन्दा वंशी च कृष्णस्य॥ दूतीत्रयम् प्रगल्भवचना वीरा वृन्दा च प्रियवादिनी सर्वकायसाधिका वंशी ॥ ४ ॥

अथ सखी पञ्चविधा सखी नित्यसखी प्राणसखी प्रियसखी परमप्रेष्टासखी एषां मध्ये काचित् समस्नेहा काश्चिद्समस्नेहा या कृष्णे स्नेहाधिका सा सखी वृन्दा कुन्दलता विद्या धनिष्ठा-कुसुमिका तथा कामदा नामात्रेयी सखीभावविशेषभाक् । या राधिकायां स्नेहाधिका सा नित्यसखी नित्यसख्यस्तु कस्तूरी

मनोज्ञा मणिमञ्जरी-सिन्दूरा चन्दनवती-कौमुदी-मदिरादयः । तत्र मुख्या या सखी स्नेहाधिका सा प्राणसखी उक्ता जीवितसख्यस्तु तुलसी केलीकन्दली कादम्बरी शशिमुखी चन्द्ररेखा प्रियम्बदा मदोन्मदा मधुमती वासन्ती कलभाषिणी रत्नावली मालती कर्पूरलतिकादयः । एता वृन्दावनेश्वर्यां प्रायः सारूप्यमागताः । मालती चन्द्रलतिका गुणचूडा वराङ्गदा माधवी चन्द्रिका प्रेम-मञ्जरी तनुमध्यमा कन्दर्पसुन्दरीत्याद्याः कोटिसङ्ख्या मृगीदृशः प्रियसख्यः । तत्र मुख्या या सा परमप्रेष्ठसखी ललिता च विशाखा च चित्रा चम्पकवल्लिका रङ्गदेवी सुदेवी च तुङ्गविद्येन्दुरेखिका यद्यप्येताः समस्नेहास्तथापि श्रीराधायां पक्षपातं कुर्वन्ति ॥ ५ ॥

अथ वयः । वयःसन्धिः नव्ययौवनं व्यक्तयौवनं पूर्ण-यौवनं चेति कलावत्यादयो वयःसन्धौ स्थिताः । धन्यादयो नव्य-यौवने स्थिताः श्रीराधादयस्तु व्यक्तयौवने स्थिताः चन्द्रावत्यादयः पूर्णयौवने स्थिताः पद्माद्याः पूर्ण यौवने स्थिता इत्यालम्बन-विभावः ॥ ६ ॥

अथोद्दीपनविभावः गुणनामताण्डववेणुवाद्यगोदोहनविभूषणगीतचरणचिह्नाङ्गसौरभ्यनिर्माल्यवर्हगुञ्जावतंसकृष्णमेधचन्द्र-दर्शनादिभेदाद्बहुविधः ॥ ७ ॥

अथानुभावाः भावः हावः हेला शोभा कान्तिः दीप्तिर्माधुर्यं प्रगल्भता औदार्यं धैर्यं लीला विलासो विच्छित्तिविभ्रमः किलकिञ्चतं मोहायितं कुट्टमितं विव्वोकं ललितं विकृतमिति विशत्यलंकाराः तत्र निविकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया । तीर्थग्रन्थिवाभ्रूनेत्रादिबिकाशसूच्यो हावः कुचस्फुरणपुलकादिनी-विवासस्खलनादिसूच्या हेला रूपभोगाद्यैरङ्गविभूषणं शोभा शोभैव यौवनोद्भेके कान्तिः कान्तिरेव देशकालादिविशिष्टा दीप्तिः नृत्यादिश्रमजनितगात्रशैथिल्यं माधुर्यं सम्भोगवैपरीत्यं प्रगल्भता ।

रोषेऽपि नयनव्यञ्जनमौदार्यम् । दुःखसम्भावनायामपि प्रेम्णि
 निष्ठा धैर्यम् । कान्तचेष्टानुकरणं लीला । प्रियसङ्गे सति मुखा-
 दीर्घा तात्कालिकप्रफुल्लता विलासः । अल्पमात्राकल्पधारणेऽपि
 शोभा विच्छित्तिः । अभिसारादावतिसम्भ्रमेण हारमाल्याद-
 स्थानविपर्ययो विभ्रमः । श्रीराधाकृष्णयोर्वर्त्मरोधनादौ गर्वा-
 भिलाष-रुदित-स्मितासूया-भयक्रुधासङ्करोकरणं हर्षादुच्यते किल
 किञ्चित्तम् । कान्तवार्त्ताश्रवणे पुलकादिभिरभिलाषस्य प्राकट्यं
 मोट्टायितं । अधरखण्डनस्तनाकर्षणादौ आनन्देऽपि व्यथाप्रकटनं
 कुट्टामतं । वाञ्छितेऽपि वस्तुनि गर्वेणादरो बिम्बाकः । भ्रूभंग्या
 अङ्गभंग्या च हस्तेन च भ्रमरविद्रावणादिचेष्टितं ललितम् ।
 लज्जादिभिर्यत् निजकार्यं नोच्यते किन्तु चेष्टया व्यज्यते तत्
 विकृतम् । इति बिंशत्यलङ्काराः । ज्ञातस्याप्यज्ञवत् प्रश्ने मौग्ध्यम् ।
 प्रियस्याप्रे भ्रमरादिकं दृष्ट्वा भयं चकितम् । इति द्वयम-
 धिकम् ॥ ८ ॥

अथान्ये अनुभावाः नीव्युत्तरीयधम्मिल्लस्रंसनं गात्रमोटनं
 जृम्भा घ्राणस्य फुल्लत्वं निःश्वासाद्याश्च ते मताः ॥ ९ ॥

अथ सात्त्विकाः । स्वेदस्तम्भादयोऽष्ट धूमायित-ज्वलित-दीप्त-
 सूदीप्ताः ॥ १० ॥

अथ व्यभिचारिणः । निर्वेदविषादाद्या भावाः ॥ ११ ॥

तत्र भावोत्पत्तिः भावसन्धिः भावशाबल्यम् भावशान्ति-
 रिति दशाचतुष्टयम् । भावोत्पत्तिः स्पष्टार्था, भावद्वयस्य मिलनं
 भावसन्धिः, पूर्वपूर्वभावस्य यः परपरभावेनोपमर्द्दः स एव
 भावशाबल्यं, भावशान्तिर्भावस्यान्तर्धानमेव ॥ १२ ॥

अथ स्यायीभावः, मधुरा रतिः सा च त्रिविधा, साधारणी
 समञ्जसा समर्था इति । कुब्जायां साधारणी साधारणमणिवत्
 पट्टमहिषीषु समञ्जसा चिन्तामणिवत् ब्रजदेवीषु समर्था कौस्तुभ-

मणिवत् । सामान्यभावेन स्वसुखतात्पर्यरतिः साधारणी । कृष्णस्य निजस्य च सुखतात्पर्यरतिः पत्नीभावमयी समञ्जसा । केवलकृष्ण-सुखतात्पर्यरतिः पराङ्गनामयी समर्था ॥ १३ ॥

अथ समर्था प्रथमदशायां रतिर्वाजवत् प्रेमा इत्थं वत् स्नेहो-
रसवत् ततो मानं गुडवत्, ततः प्रणयः खण्डवत्, ततो रागः
शर्करावत्, ततोऽनुरागः सितावत् ततो महाभावः सितोपलवत् ।
अथ प्रेमा । तत्र पूर्वसंस्कारतो वा श्रवणदर्शनादिभ्यो वा कृष्णो
प्रीत्या मनोलग्नता रतिः । विघ्नसम्भवेऽपि हासाभावः प्रेमा ।
चित्तस्थ द्रवीभावनिदानं स्नेहः । तत्र चन्द्रावल्यादौ तदीयता-
भावेन घृतस्नेहश्च आदरमयो भावान्तरमिश्रित एव सुरसो यथा
घृतम् । श्रीराधादौ मदीयताभावेन मधुस्नेह आदरशून्यः स्वत
एव सुरसो यथा मधु । अथ मानः—स्नेहाधिक्येन भद्राभद्रहेतुना
वा रोपेण वा हेतुना विनैव वा कौटिल्यं मानः । चन्द्रावल्यादौ
दाक्षिण्योदात्तः क्वचिद्दाम्यगन्धोदात्तः । श्रीराधादौ तु ललितः ।
अथ प्रणयः—मनोदेहेन्द्रियैरैक्यभावनामयो विश्रम्भः प्रणयः,
सख्यं मैत्र्यञ्च । अथ रागः—चन्द्रावल्यादौ नीलरागः स्वलग्न-
भावावरणः । तत्रैव श्यामरागोऽपि प्रायो भद्रादौ चिरसाध्यरूपः
श्रीराधादौ तु मञ्जिष्टारागोऽनन्यापेक्षो भावावरणशून्यः । तथैव
श्यामलादौ कुसुम्भरागः सुखसाध्यत्वात् किञ्चिदन्यापेक्षः ॥ पात्र-
साद्गुण्यात् स्थितिः । अथानुरागः श्रीकृष्णः सदानुभूयते अथ
च नवनवापूर्वं इव बुद्धिर्यतो भवति सः अनुरागः । तत्र चाप्राणि-
न्यपि जन्मलालसा प्रेमवैचित्र्यं विच्छेदेऽपि स्फूर्तिरित्याद-
क्रियाः । अथ महाभावः, स एव रूढः अधिरूढ इति द्विविधः ।
कृष्णस्य सुखे पीडाशङ्कया निमिषस्यापि असहिष्णुततादिकं बत्र
स रूढो महाभावः । कौटिल्यहाण्डगतं समस्तसुखं यस्य सुखस्य
लेशोऽपि न भवति समस्तवृश्चिकसर्पादिदंराकृतदुःखमपि यस्य-

दु खस्य लेशो न भवति । एवम्भूते कृष्णसंयोगवियोगयोः सुखदुःखे
यतो भवतः सोऽधिरूढो महाभावः । अधिरूढस्यैव मोदनो मादन
इति द्वौ रूपौ भवतः । यस्य उदये कृष्णस्य तत्प्रेयसीनां महा-
क्षोभश्चमत्कारो भवेत् सुदीप्तसात्विकविकारदर्शनात् स मोदनः ।
स तु राधिकायूथ एव भवति नान्यत्र । मोदनोऽयं प्रविश्लेषदशायां
मादनो भवेत् यस्य उदये सति पट्टमहिषीगणालिङ्गितस्यापि
श्रीकृष्णस्य मूर्च्छा भवति राधाविरहतापेन, ब्रह्माण्डक्षोभकारित्वं
तिरश्चामपि रोदनञ्च । प्रायो वृन्दावनेश्वर्यां मादनोऽयमुदञ्चति ।
मादनस्य एव वृत्तिभेदो दिव्योन्मादः यत्र उद्घूर्णा चित्रजल्पा-
दयः प्रेमभय्यो ऽवस्थाः सन्ति । यत्रानन्तभावोद्गमः । वन-
मालायामपि ईर्ष्या पुलिन्देष्वपि श्लाघा तमालस्पर्शिन्या मालत्या
भाग्यवर्णनञ्च । एष मादनः सर्वश्रेष्ठः श्रीराधायामेव
नान्यत्र ॥ १४ ॥

अथैषामाश्रयनिर्णयः-कुब्जायां साधारणी रतिः प्रेमपर्यन्ता
पट्टमहिषीपु समञ्जसा रतिः अनुरागपर्यन्ताः तत्र सत्यभामा
राधिकानुसारिणी लक्ष्मणा च । रुक्मिणी तु चन्दावलीभावानु-
सारिणी अन्याश्च । ब्रजस्थप्रियनर्मसखानां च अनुरागपर्यन्ता ।
ब्रजसुन्दरीणां तु समर्थारतिः महाभावपर्यन्ता, सुबलादीनाञ्च ।
तत्रापि राधिकायूथ एव नान्यत्र । तत्रापि मादनः श्रीराधायामेव
ललिताविशाखयोरपि ॥ १५ ॥

स्थायीभावः । स एव विप्रलम्भः सम्भोगश्चेति द्विविधः ।
तत्र विप्रलम्भश्चतुर्विधः पूर्वरागः मानः प्रेमवैचित्र्यं प्रवासश्च ।
अङ्गभङ्गात् पूर्वं या उत्कण्ठामयी रतिः सः पूर्वरागः तत्र दशदशा
“लालसोद्वेगजागर्या तानवं जडिमांगता । वैयग्र्यं व्याधिरुन्मान्दो
मोहो मृत्यु दर्शा दश” । मानः द्विविधः सहेतुर्निर्हेतुश्च तत्र निर्हेतुकः
स्वयमेव शाम्यति सहेतुकस्य मानस्य शान्तिः सामभेदक्रियादान-

नत्युपेक्षारसान्तरैः । प्रियवाक्यं साम । त्रिजैश्वर्यं श्रावयित्वा
 तस्या अयोग्यत्वज्ञापनं भेदः ! वयस्यादिद्वारा भयप्रदर्शनञ्च
 क्रिया । बस्त्रमाल्यादीनां प्रदानं दानम् । नर्तितर्नमस्कारः । उपेक्षा
 श्रौदासीन्यप्रकटनम् । रसान्तरं भयकृष्टादिप्रदानादिप्रस्तावः ।
 मानशान्तिचिन्हानि अश्रुस्मितादयः । अथ प्रेमवैचित्त्यम् कृष्ण-
 निकटेषुपि अनुरागाधिक्याद्विरहो यत्र भवति तदेवतत् अथ प्रवासः
 स द्विविधः किञ्चिद्दूरनिष्ठः सुदूरनिष्ठश्च नित्यमेव गोचारणाद्य-
 नुरोधात् किञ्चिद्दूरे मथुरां गते सति सुदूरे । तत्र च दश दशा
 अतिप्रबला भवन्ति । अथ सम्भोगः स च चतुर्विधः पूर्वागान्ते
 चाधरनखक्षतादीनाम् अल्पत्वे संक्षिप्तो, मानान्ते असूयामात्स-
 र्यादिरोषाभासमिश्रितः सङ्कीर्णः, किञ्चिद्दूरप्रवासान्ते सम्पन्नः
 स्पष्टः । सुदूरप्रवासास्ते समृद्धिमान् अतिस्पष्टः । अथ सम्भोगप्रपञ्चः
 दर्शन-स्पर्शन-कथन-बर्तरोध-वनविहार-जलकेलि-वंशीचौर्य-नौका-
 खेला-दानलीला-लुक्कायनलीला-मधुपानादयः अनन्ता एव ॥ १६ ॥

अनधीतव्याकरणश्चरणप्रवणो हरेर्जनो यः स्यात् ।

उज्ज्वलनीलमणिकिरणस्तदालोक्य भवतु ॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-

विरचितः उज्ज्वलनीलमणिकिरणः

समाप्तः ॥

* श्री राधावल्लभो जयति *

लिखितं शृंगारचूडामणिग्रंथम्

शीतल कल कलि ताप हर उज्वल जोति प्रकास ।
श्रीहरिवंश चंद मेरे सदा रहौ हिये आकास ॥
चित्तभूमि अभिलाष बहु अमित औषधी रूप ।
रस अमृत करुना करन सींचहु प्रेम अनूप ॥
कारन को कारन जु है सर्वेश्वर कमनीय ।
अनंत प्रकाश अचित गति नित विलास रमनीय ॥
दुर्गम गति योगींद्र हूँ ब्रह्म रुद्र रिषि आन ।
ताकौ रस तिहि कृपा तें वरनों मति अनुमान ॥
सो नंदनंदन कृष्ण तिन प्रिया राधिका जान ।
अखिल रसनि मय लसत नित उज्वल रस परिधान ॥
जे व्याकरण पढे नहीं कृष्ण चरन मन दीन ।
रसास्वाद चाहत कियौ श्रद्धा शुद्ध प्रवीन ॥
गौर नील छवि में रंगे मननि शील रस वेद ।
तिन हित विवरन कलुक यह उज्वल रस कौ भेद ॥
सबै सच्चिदानंद मय लीलारस बहु भाइ ।
नित्य एक रस नवल कल नव नव भाइ लसाई ॥
प्रथमहि आलंबन सु द्वै विषै आश्रय नाम ।
सो हैं नायक नायिका कृष्ण राधिका वाम ॥ ९ ॥
विषयालंबन वरनियत रचि रुचि मधुरे बेंन ।
नायक चूडामणि अहो कृष्ण मनोहर मॅन ॥ १० ॥

गनत वनत नहिं भेद बहु नायक कृष्ण किशोर ।
 दिग दरसन हित छ्यानवै लिखत विनय कर जोरि ॥
 सो ब्रज मथुरा द्वारिका क्रम करि मन धरि एव ।
 पूरनतम अरु पूरनतर पूरन त्रिविधि सु नेव ॥
 धीरोदात्त इक दुतिय सुनि धीर-ललित उचार ।
 धीरोद्धत तृतिय हि लहौ धीरशांत ये चारि ॥
 एक एक प्रति चारि ये तीन ठौर करि जोरि ।
 वारह भेद भये अबर लखिन सुनि कछु थोरि ॥
 रघुवर सम गंभीर अरु विनय सर्व सनमान ।
 इत्यादिक गुण जुत जहाँ धीरोदात्त बखान ॥
 काम समान जु प्रियावस्य पुनि निश्चित विदग्ध ।
 धीर ललित तासौ कहत जिन बति काम अदग्ध ॥
 भीम समानौद्धत गुन आप जु श्लाघा रोष ।
 कपट आदि बहु जानियँ धीरोद्धत लिख तोष ॥
 युधिष्ठिर वत् धर्मात्मा गुन इंद्रीजित शास्त्रज्ञ ।
 धीरशांत तासौ कहत रसज्ञाता सर्वज्ञ ॥ १८ ॥
 एक एक प्रति सभक्तियै नायक दुर्विधि प्रसिद्ध ।
 इक पति इक आसक्त जुत मधुर प्रेममय शुद्ध ॥
 नित्य कांता कांत नित नित आसक्त सरूप ।
 नित्य प्रकाश बिलास रस शक्ति अर्चित अनूप ॥
 द्वै भेदनि दुगुने भये चतुर विंश रस दान ।
 चारि चारि पुनि एक प्रति औरो सुनिदैं कान ॥
 अनुकूल रु दक्षिण धृष्ट शठ यह तिनकौ व्याख्यान ।
 रस परिपाटी में सबै आँहि रसनि की खानि ॥
 एक नायका विषै जो अनुरागी अनुकूल ।
 सर्वत्र समो दक्षिण सु है लिख्यौ सत कविनि मूल ॥

साक्षात् जो प्रिय कहै अप्रिय करे परोक्ष ।
 तासौं सठ सब ही कहैं जामें ऐसौ दोष ॥
 चिन्ह अन्य संभोग जुत निभय मिथ्यावाद ।
 सिष्ट कहत हैं धृष्ट तिहि जा महि गुन इत्यादि ॥
 ऐसैं भये चौबीस के चतुर गुने लै वेद ।
 चारि घटि शत इति भनैं समझौ नाथक भेद ॥
 आश्रयालंबन नायिका आँहि राधिका चारु ।
 ब्रज-वधुवनि की मुकटमणि नित्य प्रकाश अपार ॥
 स्वरूप शक्ति अल्हादिनी कृष्ण मयी रस रूप ।
 अंशी जु सर्व लक्ष्मी सर्व शक्ति मय स्तूप ॥
 पति कांता वनिता अवर आसक्ता द्वै भांति ।
 वृज मथुरा पुनि द्वारका नित्य ही सबै लसाति ॥
 श्री कात्यायनि व्रत परा कन्या जे तिन मध्य ।
 जो गांधर्व विवाहिता पतिवनिता ते शुद्ध ॥
 हैं प्रछन्नता करि तेइ पतिवनिता हिय लाव ।
 अप्रछन्नता नाहिनें यह शुक मुख कौ भाव ॥
 अन्या जे धन्यादि हैं कन्या तिन सुनों वात ।
 आसक्ता रति जुता सब अद्भुत भांति लसाति ॥
 और सु गोपबधुनि की लिख आसक्ता रीति ।
 जुबति जूथ में जग मगै सर्वोपरि जिन प्रीति ॥
 पति-वनिता गोकुल विषै कथ्यौ कछू तिन हेत ।
 पित्रादि शंकया करि तेऊ आसक्ता सुख देत ॥
 रुक्मिण्यादि सबै जिती आँहि द्वारिका मध्य ।
 पतिवनिता निश्चै सकल जनत जगत प्रसिद्ध ॥
 रसनि अवधि श्रीराधिका कौन नायिका तूल ।
 बहु प्रकाश रस भेद कौ सब प्रकाश की मूल ॥

पै प्रसिद्धि साधुनि लिखी आह तीन सै भाठ ।
 रसिकनि मन अवलंब हित भजन रीति रस पाठ ॥
 मुग्धा मध्या प्रगल्भा त्रिविधा समये मान ।
 धीर अधीर सु कथत हैं धीरा धीर सुजान ॥
 कुटिल अमल रचना वचन सो मध्या है धीर ।
 कठोर भाषिनी जानिये सो मध्या जु अधीर ॥
 मिश्रित वाकनि सौ लहौ मध्या धीरा धीर ।
 रसिक रहसि यह सुनत हैं जमुना कुंज कुटीर ॥
 ऐसैं हि तीन प्रकार जो आहि प्रगल्भा रीति ।
 व्यौरौ ता कौ कहत हौं सुनौ भवन दै प्रीति ॥ ४१ ॥
 निज सुरोष गोपनपरा सुरत हूँ मांझ उदास ।
 धीर प्रगल्भा कहत हैं ताकौ रसिक प्रकास ॥
 कठिन वचन तर्जन करै कर्णोत्पल कर धारि ।
 अधीर प्रगल्भा यहै सुनि ताडति नंद कुमार ॥
 रोष हि ढाँपति कल्लुक पुनि तर्जन करत जु आहि ।
 धीराधीर सु प्रगल्भा रसिक विचारत ताहि ॥
 मुग्धा मान समैं विषै रोदन मौन ही एव ।
 मुग्धा एक विधा यहै और न यामें भेव ॥
 मुग्धा एक विधा अवर मध्या त्रिविधा भाष ।
 त्रिविधा जान ह्यु प्रगल्भा सप्त विधा मन राखि ॥
 पतिकांता वनिता कहीं आसक्ता द्वै ख्यात ।
 द्वै भेदनि करि दुगण गनि भई चतुर्दश जात ॥
 कन्या मुग्धा एक विधि भई पंचदश एहु ।
 अष्टनायिका भेद अब कहीं तहां चित देहु ॥
 प्रथम एक अभिसारिका बासकसज्जा दोइ ।
 तृतीय विरह-उत्कण्ठिता चौथी कहीं सु जोइ ॥

चतुर्थ विप्रलब्धा बहुरि पंचम खण्डिता जान ।
 कलहं तहिता कौ अहौ छटी बुद्धि अनुमान ॥ ५० ॥
 स्वाधीनभक्तृका सात ई प्रोषितभक्तृका आठ ।
 ये अष्ट जो नायिका रसिक भक्त करै पाठ ॥
 जोव कृष्ण पर अभिसरत साभिसारिका नाम ।
 कृष्ण जोतिस्ना दुविधि वरनत कवि अभिराम ॥
 कुंज सु मन्दिर में ललित सूरत सेज रचे प्रीति ।
 रमन उत्सुका नायिका वासक सजा रीति ॥
 कृष्ण बिलम्ब सु होत ही विरहोत्कंठा होइ ।
 सोई विरहोत्कंठिता कहत जु बुधि जन लोइ ॥
 जब कृष्ण आए नहीं तब कहियत ये वैन ।
 होत विप्रलब्धा सोई तरुनी तिहि छिन ऐन ॥
 संभोगकांता अन्य करि चिन्ह सहित ही प्रात ।
 आये कृष्ण हि रोष कै देखि कहै कछु बात ॥
 यहै खंडिता नायिका ख्यात रसज्ञानि मध्य ।
 औरो हू भनियत कछु महत ग्रंथ मत शुद्ध ॥ ५१ ॥
 मानान्तर जो करति है पश्चात्ताप हि तीय ।
 सो कलहं तरिता सहौ धरौ रसिक रस हीय ॥
 सुरत अंत में कृष्ण कौ जोव आग्या देह ।
 वेष वनावन हेत ही स्वाधीन-भक्ति का एह ॥
 होइ सुप्रोषित भक्तृका गवन मधुपुरी कृष्ण ।
 वरनत रहत हैं महत सब रसभेदनि गति तृष्ण ॥
 कथी पंचदश बहुरि ये अष्टगुनी गनि चित्त ।
 भई एक सै बीस हौ ठोक समझनों मित्त ॥ ६१ ॥
 उत्तम अरु मध्यम जु है पुनि कनिष्ठ करि पाठ ।
 तिगुनी करै सुनायिका भेद तीन सै साठ ॥

तिन श्री ब्रजवनितानि में कोऊ नितसिद्धा आँहि ।
 सो श्री राधा आदि दै जूथ अनेक लसाहि ॥
 कोऊ साधन सिद्धा जु हैं तिन के तौन प्रकार ।
 वेद अमर मुनि इति सकल भईं सु गोपकुमार ॥

अथ सुभाव

कोऊ प्रखरा मध्या कोऊ कोऊ मृद्वी विख्यात ।
 इन कौ सुमिरन करत हैं रसिक सांभ अरु प्रात ॥
 सुन हु स्यामला मंगला इत्यादिकनि सुभाव ।
 प्रखरा इन कौं भाषियत और कथौं लहि चाव ॥
 श्री राधा रस अगाधा पाली पुनि इत्यादि ।
 ये मध्या मन में धरौ महा प्रेभ अहिलाद ॥
 चंद्रावलि भद्रादय हि मृद्वी महत कहत ।
 अथ भेद चतुष्टय और हू सोई हेत भजत ॥
 इक स्वपक्ष दुतिय हि लहौ सुहृत्पक्ष चित देहु ।
 तथस्थ प्रतिपक्ष कहूँ नीकें ही सुनि लेहु ॥
 श्री राधा कौ स्वपक्षा ललिति विशाखा आदि ।
 सुहृत्पक्ष हैं श्यामला सदा हृदैं अहिलाद ॥
 तटस्थ पक्ष भद्रादि दै प्रतिपक्षिन चंद्रालि ।
 भे द्वचतुष्टय ये भनैं इति जुत हित श्रद्धाल ॥
 श्री राधाजी कौं जानियें वामा मध्या चारु ।
 नीलंबरा रु और हू रक्तंबरा विचार ॥
 वामा प्रखरा समभियै लज्जिता जू कौं चित्त ।
 शिखी पिंछ वसना लसै परम मनोहर हित्त ॥
 वामा मध्या विशाखा तारावली सुवास ।
 वामा मध्या नीलपट चंपकलता प्रकास ॥

दक्षिण मृद्धी नीलपट चित्रा जू कौ जान ।
 दक्षिण प्रखरा शुक्लपट तुंगविद्या पहिचान ॥ ७१ ॥
 इन्दुलेखा वामा प्रखर अरुण वस्त्र छवि सोहि ।
 वामा मध्या रक्तपट देवी दोऊ जोहि ॥
 इकरंग देवी दुतिय लहु सखी सुदेवी हीय ।
 इन दोनों के नाम ये एक ठौर लिख लीय ॥
 वास्य दाक्षिण प्रखर जुत सुनों श्यामला बेंन ।
 दक्षिण मृद्धी चर धरौ भद्रा मुद्रा ऐंन ॥
 दक्षिणा मृद्धी कहत है चंद्रावलि इम जान ।
 तिन की सखि पद्मा जु ई दक्षिणा प्रखर वखान ॥ ७६ ॥
 दक्षिण मृद्धी लिखत हैं शैव्या भवन कराव ।
 अब दूती दुविधा भनौ न्यारे शील सुभाव ॥
 प्रथम स्वयंदूती बहुरि आप्तदूती दोइ ।
 आप्त दूती तीन विधि लछिन भाषौ जोइ ॥
 वाक बिना इंगित लहै जो बहूत करै जाइ ।
 अमितार्था सोई लिखी बड़ी चतुरई पाइ ॥
 अग्या करि कारज रुक्ल करै कहौ तिहि नाम ।
 निसृष्टार्था दूतीय है कही कहै जो वाम ॥
 कारज कौ साधे जु ई पत्री ही सौं धाइ ।
 कहैं पत्रहारी बहै रसिक सवैं कविराइ ॥
 शिल्पकारिणी लखहु जु दैवज्ञा अरु आन ।
 वेषधरनि परिचारिका धात्रेथी लै जान ॥ ८६ ॥
 वनदेवी पुनि सखी सुनि इत्यादिक ब्रज माँझ ।
 समैं पाइ सब अनुसरें गनें न भोर हि सौँझ ॥
 वीरा वृंदा वाँसुरी कृष्ण सु दूती तीन ।
 प्रगल्भ वचन वीरा बदन प्रिय वृंदा जु प्रवीन ॥

सब ही कारज साधिका बंशी सम नहिं कोइ ।
 पांच प्रकार व सखी सुनि लिखी प्रीति सौ जोइ ॥
 प्रथम सखी हिय में धरौ नित्य सखी गनि दोइ ।
 प्राण सखी अरु प्रिय सखी परम प्रेष्ठ रस भोइ ॥
 स्नेह अधिक करै कृष्ण सौं सखि सोई लै जानि ।
 कुमुभिका रु विद्याजिती धनिष्ठादि एतानि ॥
 स्नेह अधिक राधा विषै नित्य सखी सौं आहि ।
 कस्तूरी मनिमंजरी इत्यादिक ल चाहि ॥
 तिन हूं मैं जो मुख्य हैं प्राण सखी सो देखि ।
 वासंती अरु शशिमुखी लामिकादि लै पेखि ॥
 समस्नेह दोनों हि में कहतु प्रिय सखी ताहि ।
 कंदर्प सुंदरी शशिकला कुरंगाक्षी इत्याह ॥ ६३ ॥
 तिन में मुख्य सु जानियै परमप्रेष्ठ सखि एव ।
 ललित विसांखा अष्ट ये तिन चरननि चित देव ॥
 जदपि समस्नेहा तदपि एक रीति इन और !
 श्री राधा कौ करत हैं पक्षपात ही दौर ॥

अथ वयः—

वयस सधि नवयौवन व्यक्त सु यौवन चारु ।
 पूरन यौवन बरनीये ये जु भांति हैं चारि ॥
 वय संधि में रहै नित कलावती इत्यादि ।
 नव जोवन धन्यादि दै स्थित नित्य हूलादि ॥
 श्रीराधादि स्थित सदा व्यक्त सु जोवन मद्धि ।
 स्थिता पूरन यौवन में चद्रावलि जे शुद्ध ॥
 इत्यालंबन विभाव हि वरन्यौ कछुक बनाइ ।
 अथ उद्दीपन विभाव हि रंचक देहु जनाइ ॥

गुन नाम तांडव वेणुधुनि गोदोहन पुनि आन ।
 भूषन गीत रु चरन के चिन्ह स्फुरति दान ॥
 अंगसौरभ निर्मान्य सुनि वह गुंज अवतंस ।
 काल कलानिधि मेध बहु दरसन भेद प्रसंस ॥

अथ अनुभावा—

भाव हाव हेला कहे शोभा कांति निहारि ।
 दीप्ति त्रहुरि माधुर्य्य पुनि प्रगल्भता चारु ॥
 औदार्य्य धैर्य्य रु लीला लहु विलास विच्छिन्न ।
 विभ्रम क्लिक्किंचत निकट मोट्टायित हो मित्त ॥
 मनो कुट्टामत और हू विवोक मन आन ।
 ललित विकृत इति विश ये जानत रसिक सुजान ॥
 चित कौ प्रथम विकार कलु द्रगनि चपलता होइ ।
 भाव सु ताकौ कहत हैं कवि रसज्ञ रस जोइ ॥
 तिरछी ग्रीवा भ्रूलता नेत्रादिकनि विकास ।
 या कौ हाव लिख्यौ सवनि रस प्रथनि परकास ॥
 कुच स्फुरण पुलकनि अवर नीवी खसनि सु और ।
 हेला याही कौ कहै जे जु रसिक सिरमोर ॥
 सुरत अंत तन अलस गति भूषन अस्त व्यस्त ।
 शोभा नाम बखान ही बुध जन जगत समस्त ॥
 शोभा करि कै होइ जो जोवन को उद्रेक ।
 ताकौ कांति बखान ही कवि जन जगत अनेक ॥
 देख काल कौ पाइ कै संभोग अधिक में जोइ ।
 कांति सुई ह्वै जाइ जू दीप्त नाम रस भोइ ॥
 नृत्य आदि श्रम जनित अंग सिथल लसनि छवि ऐन ।
 ताहि कहें माधुर्य्य रचि बड़े कवीश्वर बेंन ॥

संभोगे विपरीति गति सो प्रगल्भता आदि ।
 रोषे पि विनय विजन करै औदार जुते चाहि ॥
 दुख की जही संभावना निष्ठा प्रेम न जाइ ।
 धैर्य ताकौं भानियै अद्भुत भाँति लसाइ ॥
 कांत चेष्टा अनुकरण लीला तांही भाखि ।
 पुनि विलास कौ वरनि हौं लीजौ मन में राखि ॥
 पिय सङ्ग होत मुखदिकनि प्रफुल्लतता ही वेग ।
 यह विलास है वदत सब बुधजन जूथ अनेग ॥
 अल्प आभरण धरन में सोभा सो विद्धित्त ।
 विभ्रम मति अनुसार ही वरनों सुनियौं मित्त ॥
 अभिसार आदि में होइ जब अति संभ्रम कै एव ।
 शृङ्गार विपर्जय अंगनि पर सो विभ्रम सुनि लेव ॥
 मारग रोधन आदि में गर्व और अभिलाष ।
 रोदन स्मित असूया हरष क्रोध भय भाष ॥
 इनहि आदि दै मिलन तें किलकिंचत अस नाम ।
 लख हु रसिक रस रीति इम नव भावनि अभिराम ॥
 पिय वच सुनि पुलंकादि करि प्रगटे हिय अभिलाष ।
 मोहायित ताकौं लिख्यौ रस ग्रन्थनि में साष ॥
 सर आकरषन अधर छद और हू विधि आनंद ।
 प्रगटनि विथा सुकुर्हामत सुनहु रसिक रसकंद ॥
 वाञ्छित वस्तुनि गर्व करि जहाँ अनादर होइ ।
 सो बिब्वोक जु लोक में जानत हैं सब कोइ ॥
 भृकुटो अंग भङ्गी अवर भनत्कार कर जानि ।
 भवर उड़ावन आदि जो चेष्टा ललित बखानि ॥
 लज्या करि निज काज कौं कहै नहीं जो तीय ।
 किंतु चेष्टा व्यंजन यहै विहृत धरी हीय ॥

अलंकार विंशत जु ये दोइ और धरौ चित्त ।
 इक मौग्ध्य चकित दुतिय कहौ व्याख्या मित्त ॥
 जान बूझ सु अजान कहै करै कछू जो प्रश्न ।
 मौग्धताहि निहारियै सुनहु रसिक रस ब्रह्मण ॥
 प्रिय आगै भ्रमरादि दिखि होइ भय चकित नारि ।
 ताही कौ भय चकित ही लिखत मन विषै धारि ॥
 और हू ये अनुभाव हैं सोऊ सुनि दें कान ।
 खसनि जु नीवी उत्तरो धमिल्ल हि लै जान ॥
 अंगनि ऐंडनि जूंभ पुनि घ्राण फुल्ल निस्वास ।
 इत्यादिक बहु जानियेँ सबै सुखनि की रासि ॥

अथ सात्विका:—

स्तंभ स्वेद रोमांच पुनि वेपथ और स्वरभेद ।
 वैवर्ण्य अश्रु प्रलया इती अष्ट सात्विकनि वेद ॥
 ते धूमायित ज्वलित लहि दीप्त उदीप्त चारि ।
 सुदीप्ति इति पंच विधि कृम करि मुख्य निहारि ॥

अथ व्यभिचारी:—

निर्वेद बिषादुन्माद मद दैन्य ग्लानि रु गर्व ।
 शङ्का त्रासावेग श्रम अपस्मृतो औ सर्व ॥
 व्याधि मोह मृति भालस जाड्य व्रीड अवहित्थ ।
 चिंता ग्लानि सुवितर्क धृति स्मृति हर्ष रचिकथ ॥
 अमरष उत्सुक असूया उग्रच चापल आनि ।
 सुप्त बोध निद्रा इती व्यभिचारी भावनि ॥
 तहाँ भाव उत्पति अरु भाव संधि धरि चित्त ।
 पुनि व भाव शाक्य कहु भावशान्ति इति मित्त ॥

सुनौ भाव उत्पत्ति जू स्पष्ट अर्थ ही ख्यात ।
 भाव दो इकौ मिलित जहाँ भाव संधि विख्यात ॥
 पहिले पहिले भाव कौ और भाव प्रावलय ।
 जब हि करै चपमह ही वहे भाव शावलय ॥
 भाव कौ अंतरधान हो भावशान्ति उच्चार ।
 अथ स्थायीभाव अरु मधुरा रति हि विचारि ॥
 प्रथम आहि साधारणी लहु समजंसा दोइ ।
 पुनि व समर्था तीसरी कथी व्याख्या जोइ ॥
 कुब्जा की साधारणी मनिवत् मन में ल्याव ।
 पट्ट महिषीनि समंजसा चिंतामनि सम ध्याव ॥
 ब्रजदेवीनि विषै सुनै भनों समर्था नैन ।
 कीस्तुभमनिवत् लसत नित अद्भुतता कौ ऐन ॥
 सामान्य भाव कै स्व सुख में तात्परज जिहि होइ ।
 सोई है साधारणी रसिक सुनों सब कोइ ॥
 जोव कृष्ण कौ आपनों सुखहि विचारै जीय ।
 पत्नी भावमई लसे सो समंजसा तीय ॥
 केवल एक सु कृष्ण के सुख में मति अभिराम ।
 सो आसक्तिमई लखहु सदा समर्था वाम ॥
 तहां समर्था रति सुनी प्रथम दशामहि बीजु ।
 ताते प्रेमा इल्लवत प्रथनि मांहि कही जु ॥
 ताते भनों स्नेह कौ रसवत् रसना भाष ।
 ताते मान हि बुधि विषै गुडवत् लीजै राख ॥
 ताते प्रणय सु खण्डवत् ताते राग हि जानि ।
 कह्यौ शर्करावत् हि तू हित सौं करि पहिचान ॥
 ताते जू अनुराग कौ लेहु सितावत् चीन्ह ।
 ताते और सु यहै है महाभाव रस लीन्ह ॥

स्रिवोपलावत् है सोई महाभाव हे मित्त ।
 इनके लछिन कथत हौं नीकें यहि जौ चित्त ॥
 पूरव ले संस्कार कै कृष्ण विषै रति होइ ।
 किंवा श्रवन रु दरसन मनोलग्नता जोइ ॥१०॥
 ललनानिष्ठ स्वरूप कै सुनि यौं ताकौ अर्थ ।
 अकस्मात् स्फूर्ति हिय सो व क्रिया हि समर्थ ॥
 घटनि अभाव सु विघ्न हू प्रेमा ताहि वखान ।
 द्रवीभाव जे चित्त कौ सो स्नेह लै मान ॥
 तहाँ चन्द्रावलि आदि दै जे तदीयता भाव ।
 घृतस्नेह आदरमय हि और भेद चित लाव ॥
 भावांतर मिश्रित सुरस जथा घृत लै जान ।
 श्री राधादि मदीयता मधुस्नेह मन आन ॥
 आदर शून्य स्वत ह सुरस जथा मधु उर धारि ।
 अथ सुमान कौं मन धरौ लछिनता हि निहारि ॥
 स्नेह अधिक तें होइ अरु भद्राभद्र जु हेत ।
 रोष विनय कै वास्य जौ मान मन धरौ एत ॥
 चंद्रावली सु आदि में हैं दक्षिणयोदात्त ।
 वाम गंध उदात्त कहूँ यहै आहि विख्यात ॥
 श्रीराधाजी आदि में कौटिल ललित अरु आन ।
 तर्म ललित पुनि वरनियत लेहु उपासिक जानि ॥
 एक भावनामय जहाँ मन ई ही अरु देह ।
 प्रचुर प्रणय सोई जानिये कहत रसिक जन एह ॥
 चंद्रावली सु आदि में विनय जुक्त करि देखि ।
 आहि मैत्री सुमित्री लेहु भाव कौ पेखि ॥
 श्री राधाजि आदि में यहै जानि वीचित्र ।
 आहि स्ववसतामय अहो सरुय सुसरुय मित्त ॥

अथ राग सुन कृष्ण सम्बन्धि हि अधिक दुख सुख रूपे ॥
 तिन सम्बन्धि बिना ज सुख होइ दुख को कूप ॥
 यह गति होइ जहाँ रसिक तहाँ जानियेँ राग ।
 रस भेदनि में निपुने ते समझें बड़ भाग ॥
 तहाँ लखी चन्द्रावली नीलीराग वखान ।
 स्वयम्भ भावावरन है जानत रसिक सुजान ॥
 तैसेँ हि श्यामा राग है भद्रादिक में आहि ।
 बहुते साध्य ज रूप है लीजौ मन अवगाहि ॥
 श्रीराधादि विषेँ अहौ है मञ्जिष्ठाराग ।
 अन अपेछ भावावरन शून्यजानि बड़ भाग ॥
 गन हु श्यामला आदि में राग कुसुंभ हि भित्त ।
 सो व आहि सुख साध्य हौ और हू धरिजौ चित्त ॥
 किंच अपेक्षा आन हूँ भाजन कौ सदगुन्य ।
 ता करि स्थिर लिखत हैं बुधि जन सुधि ही मन्य ॥

अथ अनुरागः—

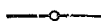
श्रीकृष्ण सदा अवलोकनो नव नव लागे मीति ।
 ऐसी बुधि हुइ जासु नें सो अनुरागहि रीति ॥
 अप्राणिति में उपजई जनम लालसा हीय ।
 लहौ प्रेमचिन्त्य पुनि अवर धरौ कछु जीय ॥
 विछेद विषेँ स्फूर्ति सुनि इत्यादि क्रिया लै जान ।
 महाभाव अब कथत हौं श्रवन करौ निजु प्रान ॥
 बिन सीमा अनुराग जब वृद्धि हि प्रापति होइ ।
 सूरजवत रवि-कांत में प्रिय सम्बन्धिनि जोइ ॥
 स्वभाव समर्पक होइ जब महाभाव तव लेष ।
 सो जु रुढ़ अधिरूढ़ इति दुविधि बुद्धि करि पेष ॥

सुख में ही श्रीकृष्ण जू पीड़ा संका खेद ।
 असहन जहाँ निमेष हू सो जु रूढ़ लै वेद ॥
 कोटि ब्रह्मांडनि में जु सुख वैकुण्ठ हू में जान ।
 सन सुख जिहि सुख लेस हू कह्यो न जात बखान ॥
 सब वृश्चिक सर्पादि करि होइ महत अति दुख्य ।
 सो दुख तिहि दुख लेस हू कहत न आवै मुख्य ॥
 कृष्ण संजोग वियोग करि सुख दुख जहाँ अस होइ ।
 कहियै जू अधिरूढ़ यह महाभाव है सोइ ॥
 सो अधिरूढ़ दुरूप भनि मोदन माद नाम ।
 व्यौरै दुहुवनि के सु ये मन राखौ अभिराम ।
 जा के चदै विषै लहौ कृष्ण प्रेयसी आनि ।
 चमत्कार महा छोभमय सूहीप्त दरसानि ॥
 सो मोदन ही मन धरौ राधा जूथ हि होइ ।
 अन्यत्र कहूं नहि होइ जू भूलि न भाषौ कोइ ॥
 मोदन विरह दशा विषै मोहन होई हेरि ।
 पटमहिषीगन करि जहां आलिगन जावेर ॥
 तहां कृष्ण कौ मूरछा राधा विरहे ताप ।
 ब्रह्मांड छोभ कारक तृजग रोदन ही आलाप ॥
 प्राय सु राधाजी विषै मोहन कहत उच्चार ।
 मोहन वृत्ति जु भेद ही हि व्युन्माद निहारि ॥
 जहां भ्रममई अवस्था अरु उदघूर्णा मीत ।
 चित्र जल्प इत्यादि बहु कहा भाषियै नीति ॥
 अथ मादन मन में धरौ जहां प्रगट बहु भाव ।
 वनमाला सौ ईरषा भील वधूनि मल्हाव ॥
 लपटि तमाल सि मालती वरनें ताकौ भाग ।
 सर्वश्रेष्ठ मादन जू वह इक राधा में जाग ॥

अनत नहीं कहीं जानियें निश्चै योंहीं आहि ।
 अब आश्रय निरनें करौं सोऊ लीजौ चाहि ॥
 कुञ्जायां साधारणी रति प्रेमा पर्जत ।
 पटमहिषीनि समंजसा रति अनुराग भनंत ॥
 तहां सतभामा जानियें राधा भाव अनुसारि ।
 पुनि सुलक्ष्मण तै सहीं कीजतु है उचार ॥
 चंद्रावलि अनुसार ही लहौ रुक्मिणी भाव ।
 मुरुर्यानि में दोइक लिखीं और हू मन में ल्याव ॥
 जिते सखा प्रियनर्म ब्रज सानुराग लौं जान ।
 समर्था रति वृजसुन्दरी महाभाव लौं मानि ॥
 त्यौं ही सुवलादीनिकहुँ धरौ हिये के मध्य ।
 मोहन राधा जूथ में अनत नहीं अनुअद्र ॥
 मोहन श्रीराधा विषै ललित विसाख हू लिरुय ।
 अनत नहीं तिन जूथ में और सुनौं किन सिष्य ।
 मादन श्रीराधा विषै न तु ललतादिक माँझ ।
 इति स्थाईभाव कहि जप हु प्रात अरु साँझ ॥
 सो विप्रलम्भ सम्भोग इति द्वै भांति निरधार ।
 तहाँ विप्रलम्भकौं चारि विधि करियत है उचार ।
 पूर्वरग इक दुत्थि अरु मान मानि ले चित्त ।
 तृतीय प्रेमवैचित्य अरु प्रवास है मित्त ॥
 अंग संग तें पहिलहीं उत्तकंठा रति जोइ
 सोई पूरवराग कथित हाँ दसा दस होइ ॥
 कृशता जडिमा लालसा जागर्या उदवेग ।
 विप्र व्याधि उन्माद अरु मोह मृत्युदश थेग ॥
 मान दुविधि बुधजन कहत सो सहेतु निर्हेतु ।
 शांति आप ही होइ जू निर्हेतुक इति चेत ॥

शांति सहेतुक मान की होइ जु इतनी भाति ।
 साम भेद पुनि दान नति और उपेक्षा जांत ॥
 कहाँ ॥ रसान्तर और जो व्यौरौ तिन कौ भाषि ।
 प्रिय सुवाक कहैं साम कौ सो मनही में राखि ॥
 निजु ऐश्वर्ज सुनाइवौ तिन्है अयोग जनाइ ।
 वयसादिक द्वारा निर्भय दरसन भेद दिखाइ ॥
 वसन माल सौगन्ध पुनि और हू दान कहाइ ।
 नमस्कार सौं नति कहत सुनियौ चित्त लगाय ॥
 उदासीनता प्रगटनों सुनां उपेक्षा कान ॥
 भय रु कष्ट प्रस्ताव जे लेहु रसांतर जान ॥
 मान शांति के चिन्ह ये आँसू म्मित आदि ।
 अथ सुप्रेम वैचिन्य कौ धरौ हियें अहिलाद ॥
 कृष्ण निकट हूँ होत है विरह जहाँ उभजाइ ।
 सोव अधिक अनुराग करि प्रेभविचित्य लिखाइ ॥
 अथ प्रवास द्वै भाति कौ किंचदूरि व सुदूरि ।
 नित गोचारन किंच अरु मथुरा जान सुदूरि ॥
 तहां दश दशा अति प्रबल लिखी लिखन नहि जाइ ।
 अथ संभोग हि वरनि हों चारि भांति चित लाइ ॥
 संक्षिप्त एक अरु दुतिय जो संकीरण मन धारि ।
 तृतिय आहि संपन्न भनि समृद्धिमान इति चारि ॥
 पूर्वराग अंत में कुच अधर नख क्षत आन ।
 अल्प अल्प कै समझिवो सो संक्षिप्त वखान ॥
 मान अंत में असूया मत्सरता औ देखि ।
 रोष भास मिश्रित सोई संकीरण लै पेखि ॥
 किंच बहुरि प्रवास के अंत भाषियत जोइ ।
 संपन्न सपष्ट रस रसज्ञ नाम कहत सब कोइ ॥

सुनों सु दूरि प्रवास के अंत विषै यह नाम ।
 समृद्धिमान इम धरत हैं बुद्धिमान अभिराम ॥
 अब सम्भोग प्रपंच कलु कहीं जु मति अनुसार ।
 दरसन परमन ओर हू मगरोकनि उचार ॥
 रास अधिक सुख रासि हो बनविहार जल केलि ।
 वंशी चौरन दान पुनि लुककायन बहु खेलि ॥
 मधुपान आदि अहिल्लाद कथि अनंत परकास ।
 रसिकदामरस रासि कहि दिग दरसन सुविचार ।
 ब्रह्म रुद्र नारद भरत पाराशर सुत व्यास ।
 शुक मुनिद्र रस गूढ़ गति मिश्रत मोद प्रकास ॥
 कठिन संस्कृत में लहिनि आरष हारद भेद ।
 रसिक उपासिक महात जन प्रगट कियौ बिन खेद ॥
 श्रीगुरु प्रसाद तें सबनि मिलि कौनों कृपा प्रसाद ।
 सूत्र मात्र रस विवर तव लिख्यौ सु मैं अहिल्लाद ॥
 कृपा सुदिनमणि किरन बहु लहि भवकास अकास ।
 तितनोई तहां होत है तितनी किरन प्रकास ॥
 रस ग्रन्थनि रसरोति में निपुन कथन आख्यान ।
 रसिक चक्रवर्त्ती महा साधु शील विद्वान ॥
 तिन सौं मो सौं सुपन में पुनि प्रतिज्ञ भये बँन ।
 जिन में प्रियता सुहृदता अरु कृपालता ऐंन ।
 फुर्यौ चित्त आराय कलुक भाषा करौ बनाइ ।
 यह सिंगार चूड़ामनि हि कियौ हियौ दै भाइ ॥
 रसिकदास की बिनती सब रसिकनि सौं एह ।
 श्रीराधा परिकर विषै मेरौ बढौ सनेह ॥



❀ श्री चक्रवर्तिजो के द्वारा रचित ग्रन्थ ❀

[१] श्रीकृष्णभावनामृत [२] श्रीगौरांगलीलामृत [३] ऐश्वर्य-
कादम्बिनी । ४। माधुर्यकादम्बिनी [५] स्तवामृतलहरी [६] भक्ति-
रसामृतसिन्धुविन्दु [७] उज्वलनीलमणिकिरण [८] भागवतामृतकण
[९] रागवर्त्मचन्द्रिका [१०] गौरगणचन्द्रिका [११] चमत्कारचन्द्रिका
[१२] प्रेमसम्पुट [१३] ब्रजरीतिचिन्तामणि [१४] क्षणदागीति-
चिन्तामणि । टीका ग्रन्थ :—

[१५] तारार्थदर्शिनी (समस्त भागवत की) [१६] सारार्थवर्षिणी (गीता
की) [१७] आनन्दचन्द्रिका (उज्ज्वलनीलमणि की) [१८] भक्तिसार-
प्रदर्शिनी (भक्तिरसामृतसिन्धु की) [१९] भक्तहर्षिणी (गोपालतापिनी
की) [२०] ब्रह्मसंहिता की टीका [२१] महती (दानकेलिकौमुदी की)
[२२] सुखवर्तिनी (आनन्दवृन्दावन चम्पू की) [२३] सुबोधिनी
(अलङ्कारकौस्तुभ की) [२४] हंसद्वी की टीका [२५] चैतन्यचरितामृत
की टीका [२६] प्रेमभक्तिचन्द्रिका की टीका ।

स्तवामृतलहरी :—

ग्रन्था :—[१] गुरुर्वष्टकम् [२] गुरुचरणस्मरणाष्टकम् [३] परम-
गुर्वष्टकम् [४] परात्परगुर्वष्टकम् [५] नरोत्तमप्रम्वष्टकम् [६] श्री-
लोकनाथाष्टकम् [७] शचीनन्दनाष्टकम् [८] स्वरूपचरितामृतम् [९]
स्वप्नविलासामृतम् [१०] गोपालदेवाष्टकम् [११] मदनगोपालदेवाष्टकम्
[१२] श्रीगोविन्दाष्टकम् [१३] श्रीगोपीनाथाष्टकम् [१४] गोकुलानन्द-
गोविन्दाष्टकम् [१५] स्वयंभगवत्त्राष्टकम् [१६] जगमोहनाष्टकम् [१७]
अनुरागवल्ली [१८] वृन्दावनाष्टकम् [१९] श्रीराधाध्यानम् [२०] श्री-
रूपचिन्तामणि [२१] सङ्कल्पकल्पद्रुमः [२२] नन्दीश्वराष्टकम् [२३]
वृन्दावनाष्टकम् [२४] गोवर्द्धनाष्टकम् [२५] श्रीकृष्णकुण्डाष्टकम् [२६]
गीतावली ।

श्रीविश्वनाथचक्रवर्तिप्रणीत—

❀ श्रीभागवतामृतकणिका ❀

श्रीमद्भागवतामृतनिर्णीतसर्वप्राधान्यो योऽनन्यापेक्षिमहै-
श्वर्यं माधुर्यः स श्रीकृष्ण एव स्वयं रूपः ॥१॥

तस्य प्रायस्तुल्यशक्तिधारी यः स तस्य विलासः, यथा-
वैकुण्ठनाथः । तस्मान्मन्यूनशक्तिधारी यः तस्यांशः, यथा मत्स्यकूर्मा-
दिकः ॥२॥

यत्रकैकशक्ति संचारमात्रं स आवेशः, यथा व्यासादयः ॥३॥

अथाऽवतारास्त्रिविधाः । पुरुषावतारा गुणावतारा लीला-
वताराश्च ॥४॥

तत्र यः प्रथमपुरुषो महत्त्वस्य स्रष्टा कारणार्णवशायी
प्रकृत्यन्तर्यामी सः संकर्षणांशः । द्वितीयपुरुषो यो गर्भोदशायी
समष्टि विराडन्तर्यामी ब्रह्माणः स्रष्टा स प्रद्युम्नांशः । तृतीयपुरुषो
यः क्षीरोदशायी व्यष्टिविराडन्तर्यामी सौऽनिहृदांशः ॥५॥

अथ गुणावताराः । सत्वगुणेन विष्णुः पालनकर्ता क्षीरोद-
नाथ एव । रजोगुणेन ब्रह्मा सृष्टिकर्ता गर्भोदशायिनाभिषद्मोद्-
भवः । क्वचित् कल्पे तादृश पुण्यकारी जीव एव ब्रह्मा । तदा तत्र
ईश्वरस्य शक्ति संचारेणावेशावतार एव । तदा तस्य रजोगुणयो-
गाद् विष्णुना न साम्यम् । क्वचित् कल्पे स्वयमेव विष्णुर्ब्रह्मा
भवति । यथा कदाचित् स्वयमेव इन्द्रो यज्ञः । तदा तस्य साम्यमेव ।

पातालादिसत्यलोकान्तसमष्टि विराट् स्थूलो ब्रह्माण एव विग्रहः
 प्राकृतः सोऽपि ब्रह्मा । तस्य जीवः सूक्ष्मो हिरण्यगर्भः सोऽपि
 ब्रह्मा । तस्यान्तर्यामी गर्भोदशायीश्वर एव । अथ तमोगुणेन
 शिवः संहारकर्ता, स्थूलवैराजसंज्ञः सूक्ष्म हिरण्यगर्भसंज्ञः सृष्टिकर्ता
 पद्मोद्भवः ईश्वर एव क्वचित् कल्पे जीवश्च क्वचित् कल्पे स्वयं
 विष्णुरपि । किं च सदाशिवः स्वयंरूपाङ्गविशेष स्वरूपो निर्गुणः
 सः शिवस्यांशी । अत एवाऽस्य ब्रह्मतोऽप्याधिक्यं विष्णुना साम्यं
 च, जीवात्तु सगुणत्वेऽसाम्यं च ॥६॥

अथ लीलाऽवताराः, चतुःसन-नारद-वराह-मत्स्य-यज्ञ-
 नरनारायण-कपिल-दत्त-हयशीर्ष-हंस-पृश्निगर्भ-ऋषभ-पृथु -
 नृसिंह-कूर्म-धन्वन्तरि-मोहिनी-वामन-परशुराम-रघुनाथ-व्यास-
 बलभद्र-कृष्ण-बुद्ध-कल्कि प्रभृतयः । एते प्रतिकल्पं प्रादुर्भव-
 न्तीति ॥७॥

अथ मन्वन्तरावताराः यज्ञ-विभु-सत्यसेन-हरि-वैकुण्ठ-
 अजित-वामन-सार्वभौम-ऋषभ-विष्वक्सेन-धर्मसेतु-सुदामा -
 योगेश्वर-वृहद्मानवः ॥८॥

अथ युगावताराः-शुक्ल-रक्त-श्याम-कृष्णाः ॥९॥

एषां मध्ये केचिदावेशाः केचित् प्राभवाः केचिद् वैभवाः
 केचित्परावस्थाः ॥१०॥

चतुःसननारदपृथुप्रभृतय आवेशाः । मोहिनी-धन्वन्तरि-हंस
 ऋषभ व्यास दत्त शुक्लादयः प्राभवाः ततोऽप्यधिक शक्ति प्रका-
 प्रकाशकाः वैभवाः, मत्स्य-कूर्म-नरनारायण-वराह-हयशीर्ष-पृश्नि-
 गर्भ-बलभद्र-यज्ञादयः । ततोऽप्यधिका परावस्था उत्तरोत्तर
 श्रेष्ठास्त्रयो नृसिंह राम-कृष्णाश्च । कृष्ण एव स्वयं भगवान्
 तस्मादधिकःकोऽपि नास्ति ॥११॥

द्वारावत्यां गोलोके च । कृष्णोऽपि सपरिवारो बलदेवसहितो ब्रजे
पूर्णतमः, मथुरायां पूर्णतरः, द्वारकायां प्रद्युम्नानिरुद्धाभ्यां
परिवार सहितः पूर्णाः गोलोके पूर्णकल्पोऽपि वृन्दावनीयलीलत्वात्
पूर्णतमसजातीयः । पूर्वपूर्वेषु माधुर्याधिक्यतारतम्यादैश्वर्यस्या-
च्छादनतारतम्यम्-उत्तरोत्तरेषु माधुर्यह्लास-तारतम्यादैश्वर्यस्य
प्रकाशतारतम्यम् ॥१२॥

यस्या जले कोटि कोटि ब्रह्माण्डानि महाविष्णुरोमकूप-
गतानि तस्या विरजायाः परिखाभूताया उपरि महावैकुण्ठलोकः ।
तस्योर्ध्वभागे गोलोकः । तत्र गोलोकनाथः श्रीकृष्णो देवलीलः
सपरिवारो वर्तते । तस्य विलासःपरमात्मा परव्योमनाथो ब्रह्मा
च निर्विशेषस्वरूपम् । गोलोकनाथस्य द्वितीयव्यूहो यो बलदेवस्तस्य
विलासो महावैकुण्ठे संकर्षणः । तस्यांशः कारणार्णवशायी ।
तस्य विलासो गर्भोदशायी ब्रह्माण्डान्तर्यामी प्रद्युम्नांशः ।
तस्य विलासः क्षीरोदशायी अनिरुद्धांशः । तस्यकूर्माद्यवतारः
गर्भोदशायिविलासः अथ-द्वारका-मथुरा वृन्दावनाख्ये धामत्रये
श्रीकृष्णस्य नरलोलाऽधिक्यतारतम्यात्-क्रमेण माधुर्याधिक्य-
तारतम्यम् ॥१३॥

सा लीला द्विविधा, प्रकटा अप्रकटा च । या युगपद्
वाल्मीकिगण्ड-कैशोर-विलासमय्यः सपरिकरस्य कृष्णस्यानन्त
प्रकाशैः-नित्यमेवाप्रकटलीला वर्तन्ते ता एव एकैर्नैव प्रकाशेन
सपरिवारेण श्री कृष्णेन यदा प्रपंचे क्रम्यतः प्रकाशयन्ते तदा
प्रकटेति । गमनागमने तु तत्तद्द्वामतः प्रकट लीलायामेवेति
विशेषः । प्रकटलीला च जन्मादिमौषलान्ता प्रत्येकं ब्रह्माण्ड-
समूहक्रमेण तत्र तत्रस्थैर्दृश्यत इति । एकमेव वृन्दावनम् एकैव

मथुरा एकैव द्वारावती च ब्रह्माण्ड कोटि समूह मध्यगभारतभूमा
तद्वासिजनैर्दृश्यते ।

यथा ज्योतिश्चक्रस्थसूर्यकिरणावलीति । यथा ज्योतिश्च-
क्रस्थ एव सूर्य एकस्मिन् वर्षे पूर्वाह्नादिकं समाप्यान्यस्मिन् वर्षे
प्रकाशयति, कुत्रचिन्न प्रकाशयति च । एवमेव श्रीकृष्णो निज-
धामस्थ एव प्रकटप्रकाशे एकस्मिन्ब्रह्माण्ड-समूहे वात्यादिलीलां
समाप्यान्यस्मिन् ब्रह्माण्डसमूहे प्रकटयति अन्यस्मिन् ब्रह्माण्डसमूहे
कामपि न प्रकटयतीति । प्रकटेऽपि वात्यादिलीलानित्यमेव
सच्चिदानन्दरूपाः किन्तु मौषलान्तलीला महिषीहरणलीला
चेन्द्रजालवत् कृत्रिमैव लीलान्तरस्य नित्यत्वसंगोपनार्थं ज्ञेया ।
तयोरुपासकाभावात् ।

किं च—प्रकटलीला मध्ये वृन्दावनस्य मणिमयवृक्षभूम्या-
दित्वं तत्परिवारेणापि केनचिद् दृश्यते—केनचिन्न दृश्यते च
तदिच्छावशात् । प्रकटलीला समाप्त्यनन्तरं तु तत्रस्थजनेन
भजनाधिक्येनाऽत्युत्कृष्टायां वर्तमानायामेव दृश्यते । तत्रापि
स्ववासना तदिच्छानुसाराभ्यामिति विवेकः । एवं च सर्वस्वरूपेभ्य
ब्रजेन्द्रनन्दनस्य मुख्यत्व सर्वधामतो गोकुलस्यैव मुख्यत्वम् ।

चतुर्धा माधुरी तस्य ब्रज एव विराजते ।

प्रेमक्रीडनयोर्वेणोस्तथा श्रीविग्रहस्य च ॥१४॥

अथ भागवतास्तेच—

मार्कण्डेयोऽम्बरीषश्च क्सुर्व्यासो विभीषणः ।

पुण्डरीको बलिः शम्भु प्रह्लादो विदुरोद्भवो ॥

दालभ्यः पराशरो भीष्मो नारदाद्याश्च वैष्णवाः ।

सेव्यो हरिरमी सेव्या नोचेदागः परं भवेत् ॥

एषां मध्ये प्रह्लादः श्रेष्ठः, ततोऽपि पाण्डवाः श्रेष्ठः, तेभ्योऽपि
केचिद् यादवाः, तेभ्योऽप्युद्धवः, तस्मादपि ब्रजदेव्यः, ताभ्योऽपि
श्री मदुराधेति ॥१५॥

अनधीतव्याकरणश्चरण- प्रवणो हरेर्जनो यःस्यात् ।
भागवतामृतकणिका मणिकांचनमिवाऽनुस्यूता ॥

इति महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथचक्रवर्तिविरचिता

❀ भागवतामृतकणिका समाप्तिमिता ❀



॥ श्री राधावल्लभो जयति ॥

❀ लिखतं रससिद्धान्त चिंतामणि ग्रंथः ❀

दोहा—श्री हरिवंस हि अनुसरत प्रसरत बुद्धि प्रकास ।
शास्त्र सिंधु मैं रत्न जो सो पैयतु अनियास ॥१॥
श्री राधा सुकटाछ सौं नित वस कृष्ण किशोर ।
तिनकौं वंदन करत हौं सीस नाइ कर जोरि ॥२॥
कहौं कछू निरनें जु ई मधि भागोत पुरान ।
आंन अपेक्षा करै नहि सवनि मांभ परधान ॥३॥
स्वरूप श्रीकृष्ण ही निश्चै किय निरधार ।
वड़ ईश्वर्य माधुर्ज जिहि पायो परत न पार ॥४॥
तिन सम कछु घटि शक्ति जिहि सो तिनको सुविलास ।
जथा महा वैकुंठ के नाथ सुनहूँ हुल्लास ॥५॥
तिन तें न्यून है शक्ति जिन ते तिनहीं कौ अंस ।
ज्यौं मत्स्य कूर्म इत्यादिक हूँ जानि लेहु निरसंस ॥६॥
एक शक्ति संचार ही मात्र सुई आवेस ।
जथा सुपृथु जिन चरित कौं गावत दिसा दिगेस ॥७॥
विलास मूर्ति अरु अंस पुनि कहि आवेस सुवेस ।
अवतार त्रिविध अव सुनो अद्भुत भांति सुदेस ॥८॥
इक पुरुषा अवतार अरु दूसरौ गुन अवतार ।
तीसरौ ई जो कह्यौ कल सो लीला अवतार ॥९॥
प्रथम पुरुष अवतार है महत् जु स्रष्टा नाम ।
सेन करत कारन समुद्र सुखद महा अभिराम ॥१०॥

अंतरजामी प्रकृति के श्री संकर्सन अंस ।
 जिन कौ जस जग मगि रह्यौ श्री भागोत प्रसंस ॥११॥
 दुतिय पुरुष जो सो सुनो गर्भोदक किय सेंन ।
 समष्टि निराट के हैं अहौ अंतरजामी अंन ॥१२॥
 श्री पद्युमन के अंस ये सुनि गुनि मन में राखि ।
 तृतिय पुरुष जो अबर लहि पुनि तिनहीं कौ भाषि ॥१३॥
 क्षीरोदकशायी तृतिय तिन कौ यहै प्रमंग ।
 व्यष्टि विराट के आहि ये अंतरजामी रंग ॥१४॥
 श्री अनिरुद्ध के अंस हैं क्षीरुदशायी एव ।
 जथा सुमति कल्लुक लिख्यौ पुरुष वतारनि भेव ॥१५॥

अथ गुनावतार—

सत्व सु गुन तें विष्णु हैं पालन कर्त्ता जानि ।
 सो क्षीरोदक नाथ ही निश्चै ही मन आनि ॥१६॥
 रज गुन तें ब्रह्मा समभि कर्त्ता स्रष्टि जु गाइ ।
 गर्भोदशायिको नामि कमल तें प्रगट्यौ आइ ॥१७॥
 कबहूँ काहू कल्प में तैसौ ई कर्त्ता पुन्य ।
 जीव सु ब्रह्मा होत है महत सुकृत करि घन्य ॥१८॥
 तहां ईश्वर की आहि जो स्रष्टि शक्ति संचार ।
 ताही के आवेस करि ब्रह्मा सो निर्धार ॥१९॥
 रजगुण तें जो प्रगट सो विष्णु की नाहि समान ।
 यहै धारि मन सुनि श्रवन पुनि औरौ आख्यान ॥२०॥
 कबहूँ काहू कल्प में विष्णु ही ब्रह्मा होहि ।
 जैसे कबहूँ आप हूं इन्द्र यज्ञ हू जोहि ॥२१॥
 तब तिन हीं की साम्य हैं निश्चै चित्त हि लाइ ।
 आप ही विष्णु भये जहाँ भेद कहा तब आइ ॥२२॥

पाताल आदि सप्त लोक लों सब ब्रह्मांड स्थूल ।
 विधि विग्रह निश्चै सु यह प्राकृत नस्वर मूल ॥२३॥
 ता कौ जीव जु कहत हौं हियें विचारौ बात ।
 हिरण्यगर्भ सूछिम कह्यौ सोऊ ब्रह्मा ख्यात ॥२४॥
 अंतरजामी तासु के गर्भोदशायी ईस ।
 तप आग्या जाकौं दई करी नवायौ सीस ॥२५॥
 अब तमगुन तें सुनों तुम शिव कर्ता संहार ।
 काहू कल्प में जीव अरु कवहूँ विष्णु निहार ॥२६॥
 कब हूं सदासिव होत हूँ रुद्र करन संहार ।
 स्वयं रूप के अंग हें विशेष स्वरूप विचार ॥२७॥
 इन्हें भनैं निर्गुन अवर सगुन शिवांसी जानि ।
 यातें ब्रह्मा तें अधिक विष्णु की आंहि समान ॥२८॥
 अथ लीला अवतार जे वरन हु कृपा प्रसाद ।
 रसिक दास शुक मुख वचन श्रवन सुने अहिलाद ॥२९॥
 प्रथम चतुर सनकादिक दुतिय श्रीनारदभाष ।
 तृतिय भनैं वाराह जू मत्स्य चतुर्थ भिलास ॥३०॥
 पंचम यज्ञ सु और सुनि नरनारायण देखि ।
 कपिल देव सप्तम सही अष्टम दत्त हि लेखि ॥३१॥
 ह्यशीर्षा नवम कथ दसम हंस सुख रूप ।
 प्रश्नगर्भ एकादसौं द्वादस ऋषभ अनूप ॥३२॥
 पृथु त्रौदश नरसिंह जी आंहि चतुर्दश ऐत ।
 कूर्म पंचदश षोड सें धन्वंतर सुख देत ॥३३॥
 आंहि सप्तदस मोहिनी बामन दश अरु आठ ।
 परसराम उनईसवें राम विंश करौ पाठ ॥३४॥

व्यास एकविंशत अवतार विवि त्रिंशत बलदेव ।
 त्रै विंशत श्री कृष्ण जू स्वयं रूप लखि लेख ॥३५॥
 बुद्ध चतुरविंशत भनें कल्की पंचरु विश ।
 एते प्रगट कल्प प्रति स्वयं रूप अरु अंस ॥३६॥
 इतनें कलारु अंस कहि सबै पुरुष के जान ।
 सर्वांशी यकै येई कृष्ण स्वयं भगवान ॥३७॥
 मन्वन्तर अवतार अब गनना गनि मन धारि ।
 प्रथम यज्ञ विभु दुतिय अरु सत्यसेन सुख सार ॥३८॥
 चौथे हरि वैकुंठ लहि अजित सुछह पुनि आन ।
 वामन सात जु आठवें सार्वभौम पहिचान ॥३९॥
 ऋषभ नवम दसवें लहौ विष्वक्सेन बखान ।
 धर्मसेत एकादसौं द्वादस सुनि दै कान ॥४०॥
 कहे सुधामा वारहें योगेश्वर दम तीन ।
 बृहद्भन चौदह सु ये जानत बड़े प्रवीन ॥४१॥
 अथ जुग अवतारनि मन धरौ हिय मधि इहि विधि सब ।
 शुक्ल रक्त अरु स्याम पुनि कृष्ण चतुर मन देव ॥४२॥
 इन महि कोऊ आवेस है कोऊ हैं सुनि चित धरि ।
 प्राभवाह अरु और जो वैभवाह छवि चारु ॥४३॥
 कोउक परावस्थाह हैं सो व्यौरौ इहि भांति ।
 रसिकदास गुरु कृपा विन सबकी मति अरु भांति ॥४४॥
 सन नारद हरि विभु जु पृथु इत्यादिक आवेस ।
 शक्तिमंत तिन तें अधिक प्राभवाह विभु एसु ॥४५॥
 मोहनी धन्वन्तर ऋषभ हंस व्यास अरु दत्त ।
 शुक्लादय हि विचार सौं नीकें धरि जो चित्त ॥४६॥

शक्ति प्रकाशक अधिक ये तिनहूँ तें मन धारि ।
 कहीं कृपा बल कै अहौ वैभवाह निरधार ॥४७॥
 मत्स्य कूर्म कल और हू नरनारायन वद्र ।
 श्री वराह हयशीर्ष पृश्नगर्भ वलभद्र । ४८॥
 यज्ञ आदि दै ये कहे वैभवाह हिय लाइ ।
 तिन हूं तें अधिके सुये परावस्थाहि लिखाइ ॥४९॥
 उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ये तीनों चिते देव ।
 नृसिंह राम,वर कृष्ण गुनि सुनि शुक मुखकौ भेव ॥५०॥
 कृष्ण स्वयं भगवान हैं इन तें अधिक न कोइ ।
 तिन के वास स्थान अब कहीं प्रीति सों जोइ ॥५१॥
 पूर्व पूर्व लखि मुख्यता चारि आहि परिधान ।
 ब्रज सु मधुपुरी द्वारिका अरु गोलोक वखान ॥५२॥
 कृष्ण ब्रज विषैं लिखैं मुनि सपरिवार उरधारि ।
 बलदेव सहित ब्रज में सदा पूरनतम निरधार ॥५३॥
 मथुरा पूरनतर सही पूर्ण द्वारिका मांह ।
 गोलोक पूरन कलप भनों कछू तिहि ठांहि ॥५४॥
 वृन्दाबन संबन्धिनी लीलनि कै लै जान ।
 पूरनतम सु सजाति हैं व्यास पुरान वखान ॥५५॥
 पूर्व पूर्व माधुर्य कौ अधिक तारतम भेव ।
 अरुढापन ईश्वर्ज कौ समभि तारतम लेव ॥५६॥
 उत्तरतें उत्तर विषैं आहि घटनि माधुर्य ।
 तारतम्य इमि कह्यौ कलवर प्रकाश ईश्वर्ज । ५७॥
 जिन विरेजा के जल विषैं कोटि ब्रह्मांडनि लेखि ।
 श्री महाविष्णु के रोम के कूप मध्य ही देखि ॥५८॥

तिनकी बिरजा की जहां खाई ऊपर और ।
 महा वैकुण्ठ सु लोक है अद्भुत सोभा ठौर ॥५६॥
 ऊर्द्धभाग ताके तहां है गोलोक अनूप ।
 तहां गोलोक सुनाथ जू राजत सोभा भूप ॥६०॥
 देवलील श्री कृष्ण जो सो येई निर्धार ।
 परिवार सहित तहां रहत नित लीजो मनहि विचार ॥६१॥
 तिन के आंहि विलास श्री महावैकुण्ठ के नाथ ।
 परमव्योम सुनाथ हो नाम ख्यात है गाथ ॥६२॥
 तिन के विलास हि जानि लै वासुदेव सुनि एव ।
 तिन विलास परमात्मा अर ऊन सभभौ भेव ॥६३॥
 लहौ ब्रह्म पुनि मन धरौ निर्विशेष जो रूप ।
 औरौ व्यौरौ है सुई सुनियों श्रवन अनूप ॥६४॥
 गा लोकनाथ के आंहि जू दुतिय व्यूह बलदेव ।
 तिनके विलास हि हुलस हिय निश्चै करि धरि लेव ॥६५॥
 महावैकुण्ठ में आंहि वर श्री संकर्षण ते जु ।
 तिनहीं के ये अस हैं कारनोद मै जे जु ॥६६॥
 तिन विलास हैं कहैं मुनि संसै छेदन हार ।
 गर्भोदक शायी सही प्रद्युम्नस विचार ॥६७॥
 विधि अंतरजामी सुये कहै धरौ हिय मद्धि ।
 समझें साधु सुवृधि जे जिन की मति है शुद्ध ॥६८॥
 तिनके विलास हि अब सुनों क्षीरोदक किय सेंन ।
 श्री अनिरुद्ध के अस है बुद्धिवंत लहै चैन ॥६९॥
 इनहीं कौं यों मन धरौ अंतरजामी व्यष्ट ।
 गुढ पुराननि तें कियौ सोध साधु यह स्पष्ट ॥७०॥

मत्स्य कूर्म अवतार जे वे इहि भांति लसांहि ।
 श्री गर्भोदक शायि के सवै विलासहि आंहि ॥७१॥
 अब सु द्वारिका मधुपुरी वृंदावन त्रै धाम ।
 कृष्ण सु नरलीलत्व के अधिक तारंतम ठाम ॥७२॥
 क्रम सौं है माधुर्य को अधिक तारतम एव ।
 अरु लीला दुविधा अही प्रगटाप्रगटा भेव ॥७३॥
 बाल कुमार किशोर जो वर विलास मय चार ।
 परिकर सहित सुकृष्ण कौं सुनो करौ उच्चार ॥७४॥
 अनंत प्रकाशनि कै महा नित्य विराजत एव ।
 अप्रकटा लीला विषैं यह जानियौ भेव ॥७५॥
 एक एव परकास करि परिकर सहित विलास ।
 जब प्रपंच में कृष्ण जू क्रमसौं करैं प्रकास ॥७६॥
 तब कहियत लीला प्रगट इति विवेक मन हेत ।
 श्रीरौं हू सुनों श्रवन दै कहीं कछू मति जेत ॥७७॥
 गमनागमन विचार यह तिन थामनि तें देखि ।
 प्रगट सुलीला मध्य ही इतनोंई जु विशेष ॥७८॥
 एक एव वृंदावन मथुरा एक ही जान ।
 द्वारावती जु एरु ही यों लीजौ उर मानि ॥७९॥
 अंड समूहनि कोटि में मधिगत भारत भूमि ।
 तिन तिन अंडनि के सवै वासो जन दिखैं भूमि ॥८०॥
 प्रगट जु लीला पुनि सुनों जनम आदि मुसलंत ।
 प्रत्येक ब्रह्मांड समूह में लीला चक्र अमंत ॥८१॥
 क्रम करि तहां तहां के जिते रहन जु हारे कोइ ।
 देखत है जिहि भांति सौं कहौं व संसै खोइ ॥८२॥

जैसें जोतिश्चक्र में रवि किरनावलि आंहि ।
 पुनि ज्यौं जोतिश्चक्र ही सूरज एव ससांहि ॥८३॥
 एक खंड में पूर्ण ज्यौं पूर्वकाल ह्वै जाइ ।
 और खंड में होत है कल प्रकास सुख दाइ ॥८४॥
 कहै प्रकास न होत है ऐसे हि कृष्ण विलास ।
 प्रकट प्रकास विषै जुई निजु धामहि जिन वास ॥८५॥
 वृन्दाबनादि निज धाम त्रे चक्र स्थानी जानि ।
 सूर्ज स्थानी कृष्ण जिमि यहै प्रगट व्याख्यान ॥८६॥
 समयस्थानी जानियेँ वाल्यादिक लीलानि ।
 यह दृष्टान्त सु ऐसे ही जानत जे धोमान ॥८७॥
 एक कृष्ण अरु धाम इक शक्ति अचित अनूप ।
 अंड समूहनि कोटि में भासमान कृष्ण रूप ॥८८॥
 एक ब्रह्मांड समूह में चरित वाल लीलादि ।
 ह्वै समाप्त पुनि और में सुनहु संत अहिलाद ॥८९॥
 अन्य ब्रह्मांड समूह में प्रगटत यों चित देव ।
 कोऊ ब्रह्मांड समूह में प्रगटत नहि सुनि लेव ॥९०॥
 प्राकृत अप्राकृत जु है भेद ब्रह्मांडनि देखि ।
 प्राकृत गयेँ सु रहत है अप्राकृत ही पेखि ॥९१॥
 अप्राकृत ब्रह्मांड जे ब्रह्मा देखे चारु ।
 वृन्दाबन में कृपा करि दिखयेँ नंद कुमार ॥९२॥
 प्रगट विषै वाल्यादि जो लीला नित्य अनूप ।
 आंहि सचिदानंद जू एव मन धरौ रूप ॥९३॥
 यै मूसल महिषी हरन लीला यों निरधार ।
 इंद्रजाल वत कृत्रिमे निहंचै मनमें धार ॥९४॥

लीलान्तर नित्यत्व की संगोपन के अर्थ ।
 यहै जानिवौ जानिवौ और जानिवौ व्यर्थ ॥६५॥
 मूसल महिषी हरन जो सो यों मन में ल्याव ।
 इन दोनोंनि उपासकनि है निरधार अभाव ॥६६॥
 परन्तु रहत है यहै सुनि लीला अंतर सोइ ।
 मायिक सृष्टि के नास हूं नास न ताकौ होइ ॥६७॥
 अचित जोगमाया जु है तिहि अनुमोदन कीन्ह ।
 कृत्रिमता के कृत्रिम हि आहि नित्यता चीन्ह ॥६८॥
 कछू प्रगट लीला विषैं सुनो और यह बात ।
 बृन्दावन मनमय सुतरु अवनि भवन भलकात ॥६९॥
 तिन के परिकर विषैं होऊ देखत कोऊ नाहि ।
 उन की इच्छावस सोई इम समझो इहि ठाहि ॥१००॥
 प्रगट जु लीला समापति ता अंतर जे और ।
 उहां रहत उन हीं विषै भजन अधिक करै दौर ॥१०१॥
 अति उतकंठा वृत्त सौं तेऊ देखत चारु ।
 सुठि सुवासना भावना तिन इच्छा अनुसार ॥१०२॥
 इति विवेक मन एक करि गहि गहरें ही प्रेम ।
 रसिक उपासिक यों समझि और समझि कियो नेम ॥१०३॥
 ऐसैं निश्चै करि सही सब स्वरूप तें मुख्य ।
 एक एव नंद नंद ही सो सब कौं करो तुष्य ॥१०४॥
 सब धामनि तें तैसैं ही गोकुल मुख्य है जानि ।
 बृन्दावन जासों कहत बड़े रसिक धोमान ॥१०५॥
 चारि प्रकार सुमाधुरी ब्रजहि विरयजत जोइ ।
 ईश्वर्जरु क्रीडा वेंनु पुनि श्री विग्रह सम कोइ ॥१०६॥

अब भक्तनि कौं कहौं जू सुनियो चित्त लगाई ।
 बड़े मारकंडे अवर अंबरीष सुखदाइ ॥१०७॥
 वसुजु व्यास सुखरासि हैं भनों विभीषन वेंन ।
 पुंडरीक वलि शंभु अरु प्रह्लाद विदुर ध्रुव चेंन ॥१०८॥
 दालभ परासर भीष्म वर नारदादि पुनि आंन ।
 इन सु वैष्णव भव्य जो श्रेष्ठ कहौं लै जान ॥१०९॥
 इन सब में प्रह्लाद जू श्रेष्ठ आहि मन राखि ।
 तिन तें पांडव श्रेष्ठ हैं और सुनांऊ भाषि ॥११०॥
 तिन हीं तें कोइक जु हैं जादव जानों मीति ।
 तिन हु विषैं उद्धव अधिक प्रगट विराजत प्रीत ॥१११॥
 तातें ब्रज देवी अधिक इन तें नाहीं और ।
 तिन ब्रजदेविनि की सु हैं श्री राधा सिर मौर ॥११२॥
 श्रीराधा सुकटाछ सौं वंधे रहत निसि भोर ।
 प्रभुता भूली प्रेम सौं ये श्री कृष्ण किशोर ॥११३॥
 आरष ग्रंथनि साक्षी देत ग्रंथ बढि जाइ ।
 सूछिम तें सूछिम लिख्यौ कछू अमृत कन लाइ ॥११४॥
 जो कदाचि विस्तार सौं अमन जु इछ होइ ।
 श्री महाप्रभू के पारषद श्री रूप लिख्यौ सो जोइ ॥११५॥
 भागवतामृत नाम इम ख्यात रूप किय देखि ।
 वृहत मांभ बहुते लिख्यौ लघुतें समभि विसेरि ॥११६॥
 ख्यात चक्रवति कि हैं साधु सुशील अनूप ।
 मन अनुशीलन करि रहै भजन रीति श्रीरूप ॥११७॥

कठिन प्रकरन व्याकरण कौ चरक रेनु कन साधु ।
माथें धरि भाषा कियौ हरि राधा आराधि ॥११८॥
प्रियजन जे वृषभानुजा जाचौं तिन सौं नित्त ।
रसिकदास सिद्धांत फल होहु तिन विषैं चित्त ॥११९॥
रस सिद्धांत चितामनि हि रचि क्व हेम जराइ ।
रसिकनि सद्गुण गृथित हिय भलकहुं नाना भाइ ॥१२०॥

इति श्री रससिद्धान्तचितामणि पूर्ण ॥



अब तक प्रकाशक के द्वारा प्रकाशित

ग्रंथ संख्या—१०६

प्रजभाषा में—४२

(सानुवाद) संस्कृतभाषा में—६५

समोक्षा— २

गौड़ीयग्रन्थगौरवः—

सानुवादसंस्कृतभाषायां प्रकाशितानि

- | | | |
|----------------------------------|---|------|
| १—अर्चाविधिः | (संप्रहीत) | १) |
| २—प्रेमसम्पुटः | (श्रीविश्वनाथचक्रवर्तिकृत) | १) |
| ३—भक्तिरसतरङ्गिणी | (श्रीनारायणभट्टजीकृता) | १) |
| ४—गोबर्द्धनशतक | (श्रीविष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य्य
श्रीकेशवाचार्य्य कृत) | १) |
| ५—चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव | (श्रीप्रबोधानन्द
सरस्वती कृत) | १।) |
| ६—नित्यक्रियापद्धतिः | (संप्रहीत) | ॥=) |
| ७—ब्रजभक्तिविलासः | (श्रीनारायणभट्टजी कृत) | १।।) |
| ८—निकुञ्जरहस्यस्तवः | (श्रीमदूरूपगोस्वामी कृत) | ।) |
| ९—महाप्रभुग्रन्थावली | (श्रीमन्महाप्रभुमुख्यपद्मविनिर्गता) | ।=) |
| १०—स्मरणमंगलस्तोत्रम् | (श्रीमदूरूपगोस्वामिकृत) | ॥=) |
| ११—नवरत्नम् | (श्रीहरिरामव्यासजी कृत) | =)। |
| १२—गोविन्दभाष्यम् | (श्रीपादबलदेवजी कृत) | ४।।) |
| १३—ग्रन्थरत्नपंचकम् | | १।।) |
| [१] श्रीकृष्णलीलास्तवः | (श्रीपादसनातनगोस्वामि कृत) | |

- [२] श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका (श्रीश्रीरूपगोस्
 [३] श्रीगौरगणोद्देशदीपिका (श्रीकविकर्णपूरजा
 [४] श्रीब्रजविलासस्तवः (श्रीश्रीरघुनाथदासगोस्
 [५] श्रीसंकल्पकल्हद्रुमः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्त
 १४—श्रीमहामन्त्रव्याख्याष्टकम् (सञ्चित
 १५—ग्रन्थरत्नषट्कम्
 १६—श्रीगोवर्द्धनभट्टग्रन्थावली
 १७—सहस्रनामत्रयम् अथवा ग्रन्थरत्ननवकम्
 १८—श्रीनारायणभट्टचरितामृतम् (श्रीजानकौप्रसादगो
 १९—उद्धवसन्देशः (श्रीमदूरूपगोस्वामिविरचित
 २०—हंतदूतम् (श्रीमदूरूपगोस्वामिविरचित
 २१—श्रीमथुरामहात्म्यम् (श्रीमदूरूपगोस्वामिविरचि
 २२—मुरलीमाधुरी (सचित्र)
 २३—राधाकृपाकटाक्षस्तोत्रम्
 २४—श्रीपदांकदूतम् (श्रीकृष्णदेवजीकृत)
 २५—श्रीशुकदूतमहाकाव्यम् (श्रीनन्दकिशोरगोस्वामिवृ
 २६—ग्रन्थरत्नत्रयम्
 [१] श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् (श्रीवृन्दावनदा
 [२] श्रीगोपालस्तवराजभाष्य
 [३] श्रीलाडिलेयाष्टकम् (श्रीनारायणभट्ट
 २७—ब्रजोत्सवचन्द्रिका (श्रीनारायणभट्ट कृ
 २८—ग्रन्थरत्नत्रिकम् (श्रीचक्रवर्तीजी विशचित्रम्)